॥ श्री स्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संग शिक्षणश्रेणी की पाठ्यपुस्तक : 10

प्रागजी भक्त

(भगतजी महाराज)

लेखक

साधु ईश्वरचरणदास

प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद – 380 004.

PRAGJI BHAKTA (Hindi Edition)
(Brief life-story of Brahmaswarup Pragji Bhakta)

By Sadhu Ishwarcharandas

A textbook for examination prescribed under the curriculum set by Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha.

Inspirer: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:
Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:
SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

..th Edition:
... ... Copies: ..,... (Total Copies: ..,...)

Warning:
Copyright: ©Swaminarayan Aksharpith
This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material from this book cannot be used without due acknowledgement to Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any reprints the written permission of the publishers is necessary.

ISBN: ---

रजूकर्ता : बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.)
'स्वामिनारायण अक्षरधाम', नेशनल हाईवे 24, अक्षरधाम सेतु,
यमुना किनारा, नई दिल्ली - 110 092.

प्रेरणामूर्ति : प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

सूचना : सर्वाधिकार सुरक्षित : © स्वामिनारायण अक्षरपीठ
इस पुस्तक के अंश किसी भी स्वरूप में प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की लिखित सम्मति अनिवार्य है।

... संस्करण : ..., ...

प्रति : ..,... (कुल प्रति : ..,...)

मूल्य : रु. .....

मुद्रक एवं प्रकाशक :
स्वामिनारायण अक्षरपीठ
शाहीबाग, अहमदाबाद-380 004.

कृपाकथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित व पोषित युवक प्रवृत्ति तीव्र गति से विस्तृत होती जा रही है। इस प्रवृत्ति से जुड़े युवाओं की आकांक्षा तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने तथा उन्हें भगवान स्वामिनारायण प्रबोधित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत की ओर अभिमुख करने के उद्देश्य से बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था ने क्रमबद्ध पुस्तकों के प्रकाशन का आयोजन किया है।

इन पुस्तकों द्वारा बालकों और युवाओं को व्यवस्थित, सुगम तथा सरल ढंग से सत्संग का शुद्ध ज्ञान प्राप्त होगा। भगवान स्वामिनारायण द्वारा उद्बोधित आदर्शों के पालन व प्रचार के लिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था, इस प्रकार की अनेक सत्संग प्रवृत्तियों में संलग्न है कि जिससे विश्व में हमारी महान हिन्दू संस्कृति का प्रचार व प्रसार हो।

भगवान स्वामिनारायण का दिव्य संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो तथा सभी मुमुक्षुओं को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो इसी हेतु इन पुस्तकों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशन किया गया है।

इन पुस्तिकाओं के आधार पर सत्संग शिक्षण परीक्षाएँ आयोजित की जाएँगी साथ ही बालकों-युवकों को प्रमाणपत्र देकर प्रोत्साहित किया जाएगा। इस पुस्तकों को तैयार करने में ईश्वरचरण स्वामी, रमेशभाई दवे, किशोरभाई दवे तथा अन्य सहयोगियों ने भारी परिश्रम उठाया है, उनको हमारे आशीर्वाद हैं।

अत्यंत स्नेहपूर्वक

जय श्री स्वामिनारायण।

शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी

(प्रमुखस्वामी महाराज)

निवेदन

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के कृपापात्र तथा गुणातीत गुरुपरंपरा के द्वितीय संतवर्य ब्रह्मस्वरूप प्रागजी भक्त का जीवनचरित्र अध्यात्म के प्रत्येक साधक का अनन्य मार्गदर्शन करता है। गुरुआज्ञा में जीवन को न्यौछावर करनेवाले प्रागजी भक्त, एक आदर्श भक्त की अनोखी मिसाल हैं। उनके जीवन प्रसंगों से श्रद्धा और भक्ति दृढ़ होती है तथा साधनापथ सरल होता है। ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करना तथा गुणातीत गुरु को प्रसन्न करना सरल बात नहीं है। परंतु जिस तरह प्रागजी भक्त ने आत्मज्ञान के साथ परमात्मा के साक्षात्कार को कठोर साधना से सिद्ध किया, वह हमें भी अपने गुणातीत गुरु को प्रसन्न करने का मार्गदर्शन देता है। उनकी भगवन्निष्ठा को संप्रदाय के समर्थ, विद्वान तथा साधुता संपन्न तेजस्वी संत शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी ने पहचाना तथा उनका पूर्ण शिष्यत्व स्वीकार किया।

अपने गुरु अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी की आज्ञा से प्रागजी भक्त ने मन्दिर में हो रही विभिन्न सेवाओं में प्रचंड पुरुषार्थ किया था। सेवा और तपश्चर्या, गुरुनिष्ठा और सहनशीलता तथा साधुता एवं धर्मनिष्ठा से उन्होंने स्वामी की प्रसन्नता प्राप्त करके परब्रह्म का साक्षात्कार किया। उनके जीवन की अनेक घटनाएँ अध्यात्म-साधकों के लिए दीपस्तम्भ के समान हैं। ऐसी ही कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं को इस छोटी-सी पुस्तिका में सरल ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्यत: श्री हर्षदराय दवे लिखित 'ब्रह्मस्वरूप भगतजी महाराज' ग्रंथ तथा शास्त्रीजी महाराज द्वारा लिखित अनेक पत्रों के आधार पर सत्संग शिक्षण परीक्षा के अभ्यासक्रम के लिए इस पुस्तिका की रचना की गई है।

तृतीय परीक्षा 'सत्संग परिचय' के अभ्यासक्रम में सम्मिलित यह पुस्तिका आप के हाथों में रखते हुए हम अत्यंत हर्षित है।

स्वामी-श्रीजी तथा प्रकट गुरुहरि प्रमुखस्वामी महाराज की प्रसन्नता के लिए सत्संगी बालक, युवक और जिज्ञासु इसकी शिक्षा प्राप्त करके सत्संग शिक्षण परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर उच्च प्रमाणपत्र प्राप्त करें ऐसी प्रार्थना है।

– सम्पादक मण्डल

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

हम सभी स्वामी के बालक, मरेंगे स्वामी के लिए।
हम सभी श्रीजी के युवक, लड़ेगे श्रीजी के लिए ॥

नहीं डरते नहीं करते, हमारी जान की परवाह।
हमें है भय नहीं किसीसे, जन्मे हैं मृत्यु के लिए ॥

हमने है यज्ञ आरंभा, सदा बलिदान हम देंगे।
हमारा अक्षरपुरुषोत्तम, गुणातीत गान के लिए ॥

हम सभी श्रीजी की संतान, अक्षर में वास हमारा है।
स्वधर्मी भभूत रमाई है, अब हमें शर्म किसके लिए ॥

मिले हैं मोती-से स्वामी, हुए हम पूर्णकाम सभी।
प्रगट पुरुषोत्तम पाये, संत से मुक्ति के लिए ॥

क्रमिका

1. प्रागजी भक्त का बाल्यकाल 1
2. सद्‌गुरु गोपालानन्द स्वामी के सत्संग में 3
3. जूनागढ़ में गुणातीतानन्द स्वामी के पास 6
4. ब्रह्मज्ञान के उत्तराधिकारी 7
5. रुग्णता का आशीर्वाद माँगा 9
6. शिष्य का बलिदान 10
7. अड़सठ तीर्थ सद्‌गुरु चरण में 14
8. संतत्व की कला 17
9. थूहर पर केले 19
10. साक्षात्कार 20
11. अक्षरधाम की कुंजी प्रागजी के पास 23
12. अक्षरज्ञान का उद्‌घोष 25
13. विरोध का आरम्भ 27
14. सत्संग में कुसंग 29
15. सत्संग से बहिष्कृत 32
16. अब प्रागजी द्वारा मेरा प्राकट्य रहेगा 34
17. सत्संग में पुनः प्रवेश 35
18. शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी के गुरुपद पर 38
19. मैंने स्वामिनारायण को धारण किया है 40
20. भगतजी के संतों को कष्ट 41
21. सत्संग सुख 44
22. संत-मंडल सत्संग में वापस लिया गया 46
23. वांसदा के दीवान के साथ सत्संग 48
24. अहमदाबाद में ज्ञान यज्ञ 49
25. भगतजी का मनमोहक व्यक्तित्व 53
26. गढ़डा में जलझुलनी महोत्सव 55
27. जूनागढ़ में अपूर्व सन्मान 59
28. अन्तिम लीला 64
29. ऐश्वर्य दर्शन 66

प्रागजी भक्त

(भगतजी महाराज)

1. प्रागजी भक्त का बाल्यकाल

मन्दिर के प्रांगण में बालवृंद एकत्र होकर रामधुन गा रहे थे। बालकों के बीच एक सुन्दर-चपल छोटा-सा बालक आनंदमग्न होकर नृत्य करते हुए रामधुन गा रहा था। मन्दिर में पूजा के लिए आए हुए भक्तजन इस बच्चे की अगाध भगवद्‌भक्ति को देखकर अपनी सारी सुध बिसर गए और बालक के नृत्य तथा रामधुन को मूर्तिवत् खड़े-खड़े देखते रहे। जब बच्चों ने रामधुन बंद की, तो लोगों को पता चला कि इन बालकों का अगुआ महुवा के गोविन्द भगत का सुपुत्र प्रागजी है। भक्तजन प्रसन्न होकर पिता तथा पुत्र दोनों को धन्यवाद दिए।

प्रागजी, गाँव के लक्ष्मीनारायण मन्दिर में बाल-मित्रों के साथ प्रतिदिन आते और हनुमानजी की पूजा करते। इस छोटे-से मन्दिर के प्रांगण में पीपल का एक वृक्ष था। वृक्ष के नीचे भगवान स्वामिनारायण, नीलकंठ वर्णी के रूप में आकर तीन दिन तक ठहरे थे।

मन्दिर के मुख्य पुजारी सूर्यभारथिजी प्रागजी की भक्ति एवं तेजस्विता से अत्यंत ही प्रसन्न थे। प्रागजी भी पुजारी की सहायता हेतु मंदिर में भिन्न-भिन्न सेवाएँ किया करते। जब पुजारी भगवान राम की कथा कहते, तो प्रागजी बड़े ध्यान से रामायण की कथा में मग्न हो जाते तथा ग्रंथ के आदर्श चरित्रों का चिन्तन करने लगते।

गुजरात के भावनगर जिले में समुद्र के किनारे बसे, सुन्दर शस्य-श्यामल महुवा नगर में, इस बाल-भक्त का जन्म एक दर्जी परिवार में फाल्गुन पूर्णिमा संवत् 1885 (सन् 1829) को हुआ था। बालक की मुखाकृति मनोहर और कांतिमय थी। उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर सभी उसकी ओर आकर्षित होते और उसे प्यार-दुलार करने लगते थे।

समय आने पर प्रागजी को पाठशाला में भेजा गया, परन्तु उसको कोई अदृश्य शक्ति पाठशाला से कहीं दूर अध्यात्म के विचारों में खींच ले जाती। प्राय: वे सहपाठियों के साथ पाठशाला से खिसक जाया करते। वे गाँव से दूर मालण नदी के रेतीले पाट में मित्रों के साथ ध्यानमग्न होकर बैठ जाते। तो कभी-कभी भगवान की महिमा कहने लगते। प्रागजी प्राय: कहा करते थे

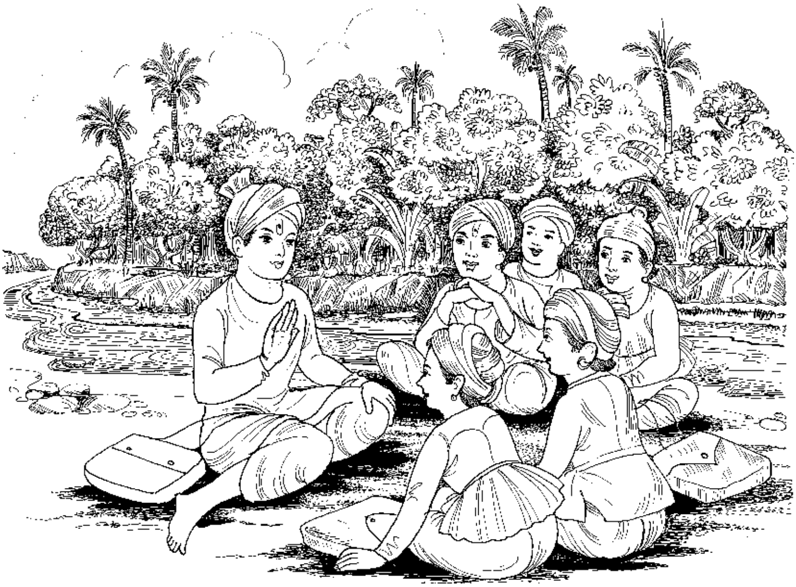

कि मेरी पढ़ाई तो कब की पूर्ण हो चुकी है। मेरा जन्म भगवान की उपासना करने तथा दूसरों को भगवान की ओर प्रेरित करने के लिए ही हुआ है। प्रागजी भक्त की ऐसी दिव्य प्रतिभा से बच्चे हमेशा उनका कहा मानते और बार-बार उन्हीं के साथ घूमते रहते।

एक दिन प्रागजी के घर में उत्सव मनाया जा रहा था। भोजन के लिए अनेक स्वजनों को निमंत्रित किया गया था। प्रागजी अपनी माता के पास आकर बोले, 'माँ! मुझे बहुत भूख लगी है। कुछ खाने के लिए दो।' क्योंकि अब तक कुलदेवी को नैवेद्य अर्पण नहीं किया गया था, अतः माँ ने कुछ देने से इन्कार कर दिया। जब वह किसी काम से बाहर गई, तब प्रागजी चुपके से रसोई में जा पहुँचे। रसोई घर में रखा हुआ सात सेर चूरमा तथा अन्य मिठाइयाँ वे खा गए। फिर घर में एक कमरे के कोठे पर चढ़कर सो गए।

जब माँ ने लौटकर देखा तो सकते में आ गईं। उसने परिवार के प्रत्येक सदस्यों से पूछा कि चूरमा-मिठाई किसने खाया? सबका एक ही उत्तर था, 'हमें पता नहीं।' अब माँ ने सोचा कि शायद कोई कुत्ता ही खा गया होगा। उसी समय कोठे पर लेटे हुए प्रागजी ने धीरे से कहा, 'माँ, वह तो मैंने ही खाया है।' यह सुनकर माँ आश्चर्य में पड़ गई। जब उनके बड़े

भाई, प्रागजी को पकड़ने के लिए उठ खड़े हुए, तो प्रागजी बड़ी चालाकी से बरामदे में कूदकर मुहल्ले की ओर भाग निकले।

प्रागजी की यह बात सारे नगर में फैल गई। सभी विस्मित होकर कहने लगे, 'यह बालक वास्तव में चमत्कारी है।'

एकबार महुवा के स्वामिनारायण मन्दिर में संप्रदाय के समर्थ संत स्वामी योगानंदजी पधारे थे। प्रागजी को संत-संगति अत्यंत प्रिय थी। वे स्वामी के पास जा पहुँचे। उनके दर्शन मात्र से बाल भक्त के अन्तर में भक्ति तथा आदर का आविर्भाव हुआ। स्वामी ने प्रागजी को वर्तमान धारण करवाकर सम्प्रदाय का आश्रित बनाया। अब प्रागजी का अधिकांश समय मन्दिर में संतों की सेवा करते हुए बीतने लगा। एकबार उन्होंने अपनी माता की साड़ी का मूल्यवान 'फाल' (पल्लू) बेचकर संतों को भोजन करवाया था। योगानन्द स्वामी ने बालक की ऐसी सेवा तथा प्रेम लक्षणा-भक्ति देखकर कहा था कि 'यह बालक भविष्य में महान भक्त बनेगा।'

2. सद्गुरु गोपालानन्द स्वामी के सत्संग में

एकबार महुवा के निकट पीठवड़ी गाँव में आचार्य रघुवीरजी महाराज और अष्टांगयोगी संतवर्य स्वामी गोपालानन्दजी पधारे थे। पीठवड़ी के राठोड भक्त ने दोनों की पूजा करने के लिए महुवा के बाल भक्त प्रागजी को निमंत्रित किया था। सत्संग की परम्परा के अनुसार संतों-भक्तों की विशाल सभा आयोजित की गई थी। दस वर्ष के प्रागजी भक्त ने प्रसंग के अनुरूप सुन्दर वस्त्र धारण किए थे। वे अपने नाम का उद्घोष होते ही सभा के सामने बिना घबराए मंच के पास आ पहुँचे। रघुवीरजी महाराज तथा उपस्थित संतों को साष्टांग प्रणाम किया और मंगल श्लोकों के साथ चंदन-पुष्पों से पूजन करने लगे।

आरती होने तक रघुवीरजी महाराज इस बालक की तेजस्विता को निहारते रहे। हरिभक्तों ने उन्हें, प्रागजी का परिचय दिया। इस पर महाराज अति प्रसन्न हुए। सभा में उपस्थित सद्गुरु गोपालानन्द स्वामी तो सभा के आरंभ से ही इस बालक की ओर कृपादृष्टि पूर्वक देख रहे थे। वे बोल उठे, 'यह बालक तो जन्मजात भक्त है।' फिर हरिभक्तों के आग्रह पर स्वामी ने

कहा, 'वास्तव में प्रागजी बहुत समर्थ है, महान है और यह तो हज़ारों लोगों को अध्यात्म के मार्ग पर प्रेरित करेगा और भगवान की पहचान करवाएगा।' यह सुनकर हरिभक्त समुदाय की प्रागजी को देखने की दृष्टि ही बदल गई।

प्रागजी भक्त भी समर्थ सद्गुरु गोपालानन्द स्वामी में अपना आध्यात्मिक मार्गदर्शक देखने लगे। महुवा के वयोवृद्ध झीणाभाई राठोड़ के साथ वे नियमित रूप से गोपालानंद स्वामी का सत्संग करने के लिए प्रतिवर्ष वरताल जाते और मार्ग में उन वयोवृद्ध हरिभक्त की सेवा भी करते।

वरताल में वे हमेशा गोपालानंद स्वामी के कमरे में ही आसन जमाते और साधारण भोजन करके दिनभर श्रद्धापूर्वक स्वामी की सेवा करते तथा उनकी कथावार्ता का लाभ लेते रहते। धीरे-धीरे प्रागजी भक्त का अनुराग गोपालानन्द स्वामी के साथ अधिक से अधिक गहरा होता चला। सत्संग की क्षुधा बढ़ने लगी।

वे निरन्तर सोचते रहते कि मैं किस प्रकार से हमेशा के लिए स्वामी की सेवा में समर्पित रहूँ! एक दिन उन्होंने स्वामी से मार्गदर्शन की इच्छा व्यक्त की। स्वामी ने कहा, 'जो कोई भगवान स्वामिनारायण को सर्व अवतारों के अवतारी स्वीकार करे तथा उनके प्रिय संत गुणातीतानन्द स्वामी

को अक्षरब्रह्म मानकर अपनी वृत्ति उनमें जोड़ दे, वह हमेशा हमारे साथ अथवा भगवान स्वामिनारायण के साथ निरन्तर रहता है। ऐसा निष्ठावान भक्त चाहे त्यागी हो या गृहस्थ, उसकी प्राप्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।'

यह सुनकर प्रागजी भक्त को श्रीहरि के साथ उनके महान संत गुणातीतानन्द स्वामी की महिमा भी समझ में आने लगी। परन्तु उनका मन गोपालानन्द स्वामी के चरणों में स्थिर हो गया था, अतः उन्होंने उपरोक्त बात पर ध्यान नहीं दिया। कभी-कभी वे त्यागी होने के लिए स्वामी के पास अपनी इच्छा व्यक्त करते, परंतु स्वामी, उनको गृहस्थ रहकर ही भगवान की उपासना करने का निर्देश देते रहे।

एकबार प्रागजी भक्त सिलाई का काम सीखने के लिए मुम्बई गए। वहाँ से आकर उन्होंने रघुवीरजी महाराज के लिए सुन्दर मोजे और अंगरखा बनाया। तत्पश्चात् वरताल जाकर उन्होंने दोनों चीजें महाराजश्री के चरणों में अर्पण किया। महाराजश्री, प्रागजी भक्त की कला एवं भक्ति को देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

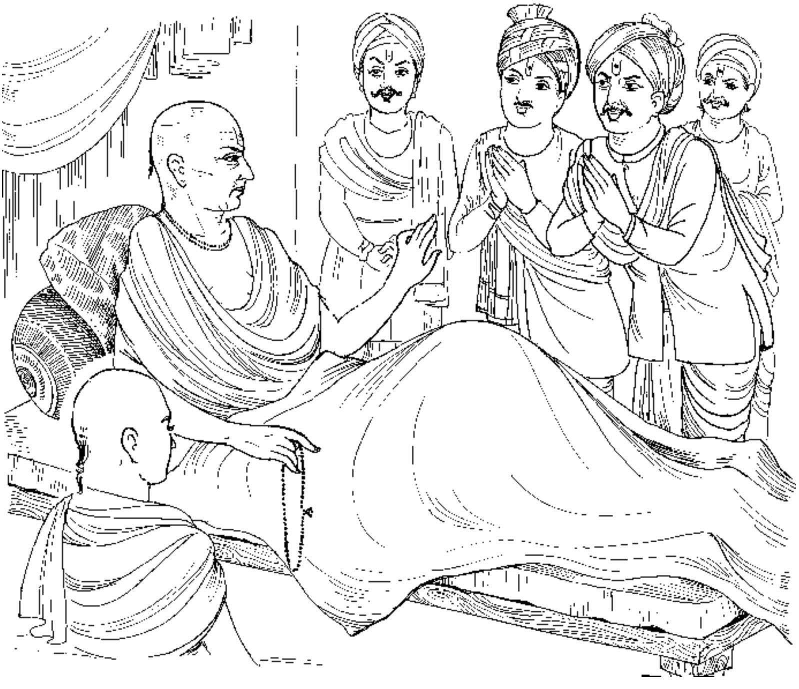

जब भी प्रागजी भक्त के मन से गोपालानंद स्वामी का विस्मरण हो जाता, तो उद्विग्न हो जाते थे। यह देखकर गुणातीतानन्द स्वामी उनको समझाते कि तुम जब बड़े संत की सेवा करके ज्ञान प्राप्त करोगे, तो व्यवहार में रहते हुए भी तुम भगवान और संत को नहीं भूल पाओगे।'

एकबार अत्यंत प्रेमार्द्र होकर गोपालानन्द स्वामी ने प्रागजी भक्त से कहा, 'प्रागजी तुम जूनागढ़ जाना, मैंने तुझे जो भी वरदान दिए हैं, वहाँ सिद्ध होंगे।'

संवत 1908 (सन् 1852) में गोपालानन्द स्वामी बीमार हो गए। वड़ोदरा के हरिभक्त उनकी खबर पूछने के लिए वड़ताल पधारे। उन्होंने प्रार्थना करते कहा, 'स्वामी, आप बड़ौदा के हरिभक्तों के प्रति (कृपा) दृष्टि रखना।'

यह सुनकर स्वामीजी ने कहा, 'अब तो हमारी दृष्टि अक्षरधाम में श्रीहरि के समक्ष होगी अथवा जूनागढ़ के योगी गुणातीतानंद स्वामी के समक्ष होगी।' यह सुनकर प्रागजी भक्त ने स्वामी से पूछा, 'कृपा करके जूनागढ़ की ओर दृष्टि करने के रहस्य को समझाने की प्रार्थना करता हूँ।' गोपालानन्द स्वामी ने स्पष्ट रूप से कहा, 'जूनागढ़ी योगी गुणातीतानन्द स्वामी, महाराज के रहने का स्थान अक्षरधाम का प्रकट स्वरूप हैं। वे भगवान स्वामिनारायण से तनिक भी दूर नहीं हैं।' इतना कहकर स्वामी वैशाख कृष्णा चतुर्थी को अक्षरधाम सिधार गए।

3. जूनागढ़ में गुणातीतानन्द स्वामी के पास

गोपालानन्द स्वामी के वियोग में प्रागजी भक्त का मन अत्यन्त ही दु:खी रहने लगा। स्वामी की स्मृति में डूबकर वे अत्यंत अशांत हो उठे थे। कुछ दिनों के बाद वे वरताल से गढ़डा चले गए। वहाँ के संत सिद्धानन्द स्वामी ने उनको बहुत सांत्वना दिया और उन्हें, गुणातीतानन्द स्वामी के पास जूनागढ़ ले गए।

प्रागजी भक्त को देखते ही गुणातीतानन्द स्वामी ने स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा, 'अरे! यह वन का मृग कहाँ से आ गया?' उन्होंने बड़े स्नेह से प्रागजी भक्त को सांत्वना दिया और वहीं रहकर उन्हें आध्यात्मिक प्रगति करने का आदेश दिया। प्रागजी भक्त को अद्‌भुत मानसिक शांति मिली। अब उन्हें स्मरण होने लगा कि कुछ वर्ष पहले गोपालानन्द स्वामी ने जूनागढ़ जाने का

निर्देश दिया था। प्रागजी भक्त के लिए अब जूनागढ़ साधना-स्थल बन गया तथा तपोमूर्ति गुणातीतानन्द स्वामी को उन्होंने अपना गुरु मान लिया।

भगवान स्वामिनारायण की सर्वोपरिता तथा ब्रह्मरूप होने की साधना संबंधी स्वामी की ज्ञानमय बातें प्रागजी भक्त के अन्तर में गहराई तक उतरने लगीं। उन्हें अधिकांश समय तक जूनागढ़ में रहकर स्वामी को प्रसन्न करने की लगन लग गई। प्रतिवर्ष आठ महीने वे गुणातीतानन्द स्वामी के सत्संग में बिताने लगे।

संवत् 1911 (सन् 1855) में स्वामी ने वरताल में एक महीने तक स्वरूपनिष्ठा और एकान्तिक धर्म पर अद्भुत ज्ञानवार्ता का लाभ दिया। उनके प्रत्येक शब्द प्रागजी भक्त के चित्त में अंकित हो गए। वे बड़े-बड़े संतों एवं हरिभक्तों के पास बैठकर स्वामी की बातें दोहराया करते तथा गुणातीतानंद स्वामी अक्षरब्रह्म अवतार है, एवं भगवान स्वामिनारायण के निवास के लिए वहीं अक्षरधाम हैं; यह बात अपनी वाणी में सहज ही गूँथ लेते।

4. ब्रह्मज्ञान के उत्तराधिकारी

एकबार उत्सव के अवसर पर प्रागजी भक्त वरताल नहीं पहुँच सके। परिणाम स्वरूप स्वामी का दर्शन करने की उत्सुकता लिए वे उन्हें ढूँढ़ते हुए सारंगपुर आ पहुँचे। परंतु उस समय स्वामी निकट के एक गाँव खांभड़ा में बिराजमान थे। भारी वर्षा होने के कारण वे बड़ी कठिनाई से खांभड़ा पहुँचे।

स्वामी अपने प्रिय शिष्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। क्योंकि उसी दौरान उन्होंने प्रागजी का स्मरण किया था। मध्यरात्रि के समय स्वामी ने अपने सेवक से कहा कि मुझे भूख लगी है। कुछ रोटियाँ मंगवाकर स्वामी ने एक टुकड़ा तो स्वयं लिया और शेष प्रसादी प्रागजी भक्त को दे दी।

अगले दिन स्वामी प्रातःकाल के समय खांभड़ा से सारंगपुर के लिए चले। रास्ते में नारायणकुण्ड के पास शौच-क्रिया के लिए बैलगाड़ी से उतरे। जब वे शौच से लौटे तब प्रागजी भक्त उनके हाथ धुलवाने लगे। हाथ पर पानी डाल रहे प्रागजी भक्त को देखकर स्वामी ने एकान्त स्थान में अपने हृदय की बात प्रकट की और कहा, 'प्रागजी! मेरे हृदय में कूटकूटकर ब्रह्मज्ञान भरा पड़ा है और अब तो वह छलकने लगा है, किन्तु मुझे ज्ञान

प्राप्त करनेवाला कोई सत्पात्र शिष्य नहीं मिल रहा, जो इस ज्ञान को अपने हृदय में धारण कर सके।'

स्वामी का भाव देखकर प्रागजी भक्त ने प्रणाम करके कहा, 'स्वामी! क्या आप वह ब्रह्मज्ञान मुझे दे सकते हैं?' स्वामी ने हँसकर कहा, 'वह तो स्वयं का बलिदान करके तथा अपने शरीर एवं अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण करके मेरे साथ रहने के लिए तैयार हो, उसी को मिल सकता है।'

प्रागजी भक्त के मन में यह बात गहराई तक उतर गई और वे स्वयं उस ज्ञान को प्राप्त करने की योग्य पात्रता अर्जित करने का निश्चय किया। स्वामी ने भी अपने इस शिष्य को उचित पात्र समझकर बार-बार आशीर्वाद दिया।

5. रुग्णता का आशीर्वाद माँगा

जब भी प्रागजी भक्त महुवा जाते, तब मन्दिर में हरिभक्तों को ज्ञानवार्ता करके भगवान स्वामिनारायण की सर्वोपरिता तथा गुणातीतानन्द स्वामी स्वयं अक्षरब्रह्म हैं, यह बात समझाते रहते।

संवत् 1916 (सन् 1860) में गढ़पुर में श्री हरिकृष्ण महाराज की मूर्ति स्थापित की जा रही थी। प्रागजी भक्त ने गोपीनाथजी महाराज और हरिकृष्ण महाराज के लिए सुन्दर वस्त्र तैयार किए थे, जिसे उन्होंने उक्त अवसर पर रघुवीरजी महाराज को भेंट किए। वे बहुत प्रसन्न हुए। उसी वर्ष जूनागढ़ में भी श्री हरिकृष्ण महाराज की मूर्ति स्थापित की गई थी। प्रागजी भक्त ने हरिभक्तों की सहायता से ठाकुरजी के लिए सुंदर जरीदार वस्त्र तैयार किए।

गुणातीतानन्द स्वामी प्रागजी भक्त की ऐसी विशेष भक्ति और व्यावहारिक सूझ-समझ से बहुत प्रसन्न हुए।

मन में निरंतर श्रीहरि का भजन करते हुए, प्रवृत्तिरत रहने का अभ्यास प्रागजी भक्त ने सिद्ध कर लिया था। फिर भी कदाचित् उनका मन इधर-उधर हो जाता, तो वे बहुत दु:खी हो जाते थे। एक आदर्श साधक होने के कारण, एकबार उन्होंने स्वामी से प्रार्थना करते हुए कहा, 'स्वामी, मैं, आपसे वरदान मागता हूँ कि मेरा शरीर कुछ रोगग्रस्त हो जाए, जिससे बीमारी के दौरान मेरा मन आप में स्थिर रहे।' इस वरदान के कारण वे कुछ दिनों तक बीमार रहे। उस अवस्था में उन्होंने स्वामी में अपनी अखण्ड वृत्ति जोड़ दी और धीरे-धीरे स्वामीमय होने लगे।

अगले वर्ष रघुवीरजी महाराज फूलदोल-उत्सव में जूनागढ़ पधारनेवाले थे। गुणातीतानन्द स्वामी ने प्रागजी भक्त को आज्ञा दी कि 'विशाल सभामण्डप को ढकने के लिए तुम बड़ा शामियाना तैयार करो।'

प्रागजी भक्त ने स्वामी की इच्छा जानकर भक्तों से बात करके शामियाना के लिए वस्त्र आदि सामग्री एकत्र की तथा सीने का काम प्रारम्भ कर दिया। यह सेवा, वे दिन-रात निरंतर करते रहे।

एकबार स्वामीजी काम की प्रगति का निरीक्षण करने पधारे। उस समय प्रागजी भक्त कपड़ा सीते हुए भजन गा रहे थे। यह देखकर स्वामी बहुत प्रसन्न

हुए। उन्होंने कहा, 'मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आज तुम्हारी जो भी माँगने की इच्छा हो, वह वरदान माँग लो।' प्रागजी भक्त ने उस क्षण कुछ नहीं माँगा। किन्तु आज स्वामी ने स्वयं ही वरदान देते हुए कहा, 'जा, तुझे बहुत धन मिलेगा और गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी तूं महान संतों का सत्संग करेगा।'

यह सुनकर प्रागजी भक्त ने हाथ जोड़कर कहा, 'स्वामीजी! मैंने गोपालानंद स्वामी और आप से भी यही सुना है कि धन और स्त्री से कभी शाश्वत सुख नहीं प्राप्त होता। अतः आप कृपा करके मुझे अपना ज्ञान और अपना धाम देकर मेरी आत्मा को सत्संगी बनाइए।'

यह सुनकर गुणातीतानंद स्वामी बहुत प्रसन्न हुए। फिर भी उन्होंने प्रागजी को भौतिक धन-संपत्ति की बहुत लालच दी। किन्तु प्रागजी भक्त हाथ में आई चिन्तामणि को भला क्यों गँवाते? स्वामी ने जब देखा कि प्रागजी भक्त त्रिलोक के सुख को ठोकर मार कर अपने निश्चय पर दृढ़ हैं, तो स्वामी ने उनसे कहा, 'तुम्हें वे तीन वरदान तभी मिल सकते हैं, जब तुम अपना घर-बार सब कुछ त्यागकर यहाँ रहो और आज्ञा-पालन हेतु मर मिटो!'

प्रागजी भक्त की उत्कृष्ट श्रद्धा देखकर स्वामीजी ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया। एक ऐसा शामियाना (चंदनी), जिसे अनेक दर्जी मिलकर रात-दिन काम करते हुए, एक महीने में पूरा कर सकते हैं; उसे प्रागजी भक्त ने रात-दिन काम करके अकेले ही एक महीने में तैयार कर दिया! इस सेवा से स्वामीजी उन पर बहुत प्रसन्न हुए।

6. शिष्य का बलिदान

गुणातीतानन्द स्वामी की मर्जी समझकर प्रागजी ने घर-संसार का त्याग कर दिया और वे हमेशा के लिए जूनागढ़ आकर बस गए। यहाँ मन्दिर-परिसर में नई हवेली का निर्माण हो रहा था। प्रागजी भक्त ने हवेली की नींव खोदने में कड़ी मेहनत की। नींव की खोदाई पूरी हो जाने के पश्चात् स्वामी ने प्रागजी भक्त को रेत धोकर, उससे नींव भरने की आज्ञा प्रदान की। यह काम प्रागजी भक्त ने अकेले ही पूरा किया। उनकी सेवा की लगन देखकर स्वामी हमेशा प्रागजी भक्त की प्रशंसा करते रहते। इसी कारण वे भी सेवा के लिए अधिकाधिक उत्साहित होने लगे।

नींव भर जाने के बाद, जो कठिन काम शुरू हो रहा था, वह था – चूना बनाने का! उन दिनों चूने में पानी डालकर नंगे पैर चूने को रौंदना पड़ता था। परंतु चूने की गर्मी के कारण यह काम करनेवाले लोगों को अंधे हो जाने तथा शरीर पर फफोले पड़ जाने का भय हमेशा बना रहता। इस सेवा के लिए कोई भी सामने नहीं आया। परंतु स्वामी की इच्छा से प्रागजी भक्त तैयार हो गए। वे प्रसन्न होकर चूने के बारदान अपनी पीठ पर ढो लाते। उसे चौक में खाली करते, चूने में पानी डालते और अपने पैरों से रौंदकर नींव में भरने के लिए माल तैयार करते। यह सब वे स्वामी की प्रसन्नता के लिए कर रहे थे। उनके मन में किसी के प्रति दुर्भाव नहीं था। सभी साथियों के साथ दिव्यभाव रखते हुए, वे सेवा में तल्लीन हो जाते थे। यदि कोई उन्हें चेतावनी देता, 'प्रागजी! चूने की गर्मी से तुम अंधे हो जाओगे।' तो वे सीधा सा उत्तर देते, 'स्वामी के चरणों में मेरी देह कुर्बान है। मुझे तो केवल उन्हीं को प्रसन्न करना है।'

इतनी सेवा के बाद भी एकबार स्वामी ने उनसे कहा, 'प्रागजी, तुम शरीर की ताक़त लगाकर इतनी मेहनत करते हो, किन्तु तप किये बिना, तुम्हारी इन्द्रियों की शक्ति नहीं क्षीण होगी।' यह सुनकर उन्होंने लगातार दो दिन तक उपवास तथा तीसरे दिन एक समय खाने का एक विशिष्ट व्रत प्रारम्भ किया। इतने कठोर व्रत में भी वे दिनभर की सेवा से कभी चूके नहीं। थोड़ी सी भी फुर्सत मिलने पर, वे स्वामी के पास बैठकर उनकी दिव्य बातें सुना करते। रात्रि के समय भी वे एकाध घंटा गोरक्ष आसन बनाकर सोते और तुरंत जागकर स्वामी की बातें सुनने लगते। उन दिनों वे कभी बिस्तर पर लेटे ही नहीं थे।

ऐसी अपार सेवा तथा भक्ति से स्वामी की प्रसन्नता बढ़ने लगी। वे बारबार वचनामृत खोलकर श्रीहरि द्वारा कथित गूढ़ अभिप्रायों को समझाते और समय-समय पर योग की क्रियाओं का ज्ञान देते। प्रागजी भक्त का एक ही लक्ष्य था कि स्वामी की मर्जी के अनुसार जीवन जीना तथा उनकी प्रत्येक आज्ञा का सहर्ष पालन करना।

स्वामीजी प्राय: उनकी परीक्षा लिया करते थे। एकबार स्वामी ने कहा, 'प्रागजी! चूना तैयार करना है, मुझे दो सौ फावड़े और पाँच सौ तसले चाहिए।'

प्रागजी मन्दिर में जाकर जितने भी फावड़े और तसले मिले, लेकर आ पहुँचे। उन्होंने स्वामी से कभी भी तर्क-वितर्क नहीं किया तथा यह भी नहीं पूछा कि इतने सारे फावड़े और तसले मंदिर में हैं ही नहीं, तो मैं कहाँ से लाऊँ? वे स्वामी को सर्वज्ञ समझकर आज्ञा का पालन करते थे।

एकबार स्वामी ने प्रागजी भक्त को बुलाकर अचानक आज्ञा दी, 'प्रागजी! जाओ, गिरनार पर्वत को बुला लाओ। वह बेचारा तप कर रहा है, तो उसका भी कल्याण कर दें।'

प्रागजी, एकपल भी सोचे बिना, गिरनार को बुलाने के लिए दौड़ पड़े। कुछ लोग प्रागजी भक्त की निन्दा करने लगे कि उसे विवेक बुद्धि ही नहीं है। भला गिरनार पर्वत मंदिर में आ सकता है क्या? आज्ञा पालन में भी तुम्हें विवेक बुद्धि से काम लेना चाहिए।'

प्रागजी भक्त ने उत्तर देते हुए कहा, 'बिना किसी टीका-टिप्पणी के गुरु की समस्त आज्ञाओं का पालन करना मेरा कर्तव्य है। हमें वहीं आज्ञा का पालन नहीं करना चाहिए जो धर्म-विरुद्ध हो। मैं गिरनार के पास जाऊँगा और उसे स्वामी की आज्ञा सुना दूँगा। मेरा कर्तव्य पूरा हो जाएगा। अब उसे सोचना है कि वह स्वामी के पास आए या न आए।'

प्रागजी की ऐसी गुरुनिष्ठा देखकर सभी लोग चकित रह गए!

एकबार उन्होंने लगातार तीन दिनों तक मेहनत करके चूने की भट्ठी तैयार की तथा उतने ही परिश्रम से उन्होंने तीन दिनों तक भट्ठी में चूने के पत्थर भरे। इतनी अपार सेवा देखकर स्वामीजी, उन पर बहुत प्रसन्न हुए। उनको दो-तीन बार गले लगाया, मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। प्रागजी की आँखों से आँसू बहने लगे। उन्होंने सोचा, 'मेरा कितना अहोभाग्य कि गुणातीतानन्द स्वामी ने स्वयं मुझे गले लगाया और इतनी कृपावर्षा की!'

उनकी वृत्ति निरन्तर स्वामीजी से जुड़ी हुई थी, जो छोटी-सी छोटी घटना में भी दिखाई देती थी।

एकबार स्वामी, संतों-हरिभक्तों के साथ घास काटने के लिए सांखड़ावदर के घास के मैदान में पधारे। अचानक तेज वर्षा होने लगी। प्रागजी भक्त ने दो मोटी चादरों का छाता बनाया और स्वामी को उसके

नीचे बैठा दिया।

स्वामी प्रसन्न होकर कहने लगे, 'कल्याण तीन बातों में निहित है, ब्रह्मस्वरूप सत्पुरुष में आत्मबुद्धि रखने में, उनकी अनुवृत्ति-आज्ञा का पालन करने में तथा उनकी सेवा करने में।'

करसन नाम का एक नाई था। वह जूनागढ़ के मन्दिर में आकर संतों का मुंडन किया करता था। एकबार उसने प्रति व्यक्ति एक पैसे का भाव बढ़ा दिया। गुणातीतानन्द स्वामी ने उसे भाव न बढ़ाने का बार-बार आग्रह किया, परंतु वह तैयार न हुआ। मुंडन न होने से कुछ दिनों के बाद सभी संत व्याकुल होने लगे। यह देखकर स्वामी ने प्रागजी भक्त को बुलाया और नाई का काम संभालने के लिए आदेश दिया। उसी पल वे तैयार हो गए। वे शहर जाकर उस्तरा ले आए और सबसे पहले स्वामी का मुंडन किया, बाद में सभी संतों की सेवा की। इस प्रकार उन्होंने लगातार छः मास तक संतों के मुंडन की सेवा की परंतु उस समय निम्न कहलाने वाली इस सेवा से कभी लज्जित नहीं हुए। स्वामी भी प्रसन्न होकर हमेशा अपने पत्तर से उनको भोजन देते तथा आशीर्वाद बरसाते।

7. अड़सठ तीर्थ सद्गुरु चरण में

प्रागजी भक्त मंदिर में रहकर अनेक प्रकार की सेवा करते रहे थे। वे नाई, दर्जी, राजमिस्त्री, बढ़ई, लोहार और लकड़हारे का काम करते हुए, अनेक सेवाओं में लगे रहते थे। स्वामी के पास निरन्तर शास्त्रों का पठन भी चलता रहता। प्रागजी भक्त रात्रि की अन्तिम कथा पढ़ने की सेवा भी सम्भाल रहे थे। देर रात तक वे स्वामी की सेवा करते, पैर दबाते। यहाँ तक कि मध्यरात्रि को स्वामी लघुशंका के लिए उठ जाते, तो प्रागजी भी उठकर दिया लेकर साथ चलते, हाथ धुलवाते और सम्भालकर आसन पर लाकर सुला देते। यद्यपि उनके अन्तर में गुरु का स्मरण निरन्तर रहा करता था। फिर भी वे प्रत्यक्ष गुरुसेवा की तीव्र अभिलाषा रखते थे।

जूनागढ़ मन्दिर के महन्त होने पर भी स्वामी मन्दिर की कुछ प्रवृत्तियाँ स्वयं संभाल रहे थे। इन सेवाकार्यों के कारण वे कथावार्ता के लिए अधिक समय नहीं दे पाते थे। कभी-कभी स्वामी इस विषय में अपना दुःख व्यक्त

करते रहते। प्रागजी भक्त ने स्वामी की कठिनाई को समझा और विनम्रता से अपनी भावना प्रस्तुत की, उन्होंने कहा, ‘मन्दिर में अब आपके स्थान पर मैं सेवा की जिम्मेदारी संभालूँगा। आप केवल सभा-मण्डप में बैठकर निरंतर कथावार्ता का लाभ देकर भक्तों को आनंदित करते रहें।’

यह सुनकर स्वामी बहुत प्रसन्न हुए और बोले, ‘तुम्हारे पास तो पहले से ही तेइस घण्टों की सेवा है, तो तुम मेरे बदले में सेवा करने का समय कहाँ से निकालोगे?’ परंतु स्वामी के प्रति अपार भक्ति के कारण प्रागजी ने कभी भी अपने शरीर की परवाह नहीं की।

हवेली–निर्माण का काम चल ही रहा था। मन्दिर के बाहर पत्थर की कुछ शिलाएँ पड़ी हुई थीं। एक शिला पर एक मरा हुआ कुत्ता पड़ा था। लोगों ने सोचा कि सफाई करनेवाला आएगा और उसे उठा ले जाएगा। परंतु तब तक के लिए काम स्थगित हो गया। स्वामी ने प्रागजी से पूछा, 'पत्थरों का लाना क्यों बन्द हो गया है?'

वे बाहर गए और देखा तो एक मरा हुआ कुत्ता पत्थरों की ढेर पर पड़ा था। उन्होंने सोचा कि स्वामी ने परोक्ष रूप से इस कुत्ते को हटाने की मुझे आज्ञा दी है। वे तुरन्त अपने कपड़े बदलकर वहाँ जा पहुँचे और मृत कुत्ते को वहाँ से हटाया दिया। इसके बाद स्नान करके वे मन्दिर में स्वामीजी के पास जा पहुँचे।

पत्थर ढोने का काम पुनः शुरू हो गया, जिससे स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए। इस घटना से कुछ लोगों ने मुँह बिचकाया, तो कुछ लोग प्रागजी की आलोचना करते हुए कहा कि मरे हुए कुत्ते को उठाकर उन्होंने नीच काम किया है। यह सुनकर गुणातीतानंद स्वामी ने कहा, 'जीव-प्राणीमात्र तो एक प्रकार से चमड़ा ही चूथता रहता है। प्रागजी ने तो मेरी मर्जी जानकर मरे हुए कुत्ते को हठाया और काम पुनः चालू करवाया, तो उसने क्या गलत किया है?'

एकबार अन्नकूट का उत्सव समाप्त होने के बाद, प्रागजी जूठे बरतनों को मांज रहे थे । उन जूठे बर्तनों का गन्दा पानी एक टंकी में इकट्ठा होता रहता था। अचानक स्वामी वहाँ पधारे और टंकी के निकट खड़े होकर प्रागजी के काम को देखने लगे। फिर स्वामी ने टंकी के किनारे पर अपना पैर रखा। गंदा पानी उनके अंगूठे का स्पर्श कर रहा था। एकाएक स्वामी ने प्रागजी से पूछा, 'प्रागजी, अड़सठ तीर्थ कहाँ मिल सकते हैं?'

प्रागजी भक्त इस प्रश्न के गूढ़ अर्थ को समझ गए और उठकर गंदे पानी की टंकी में छलाँग लगा दी! उनका संकेत यह था कि सद्‌गुरु के परम पावन चरणों में ही अड़सठ तीर्थ समाये हुए हैं।

स्वामी भी प्रागजी भक्त को इस तरह देखकर विस्मित हो गए और कहने लगे, 'प्रागजी ! तुम धन्य हो! अब बाहर निकलकर स्वच्छ जल से स्नान कर लो।'

भक्ति की यह पराकाष्ठा देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे।

एकबार उनको सेवा करते देखकर मानाभगत ने स्वामी से कहा, 'इस बेचारे प्रागजी ने आपसे ध्यान सीखने के लिए संसार छोड़ा। परन्तु आप तो उससे पत्थर ढुलवाते रहे हैं और उसकी शक्ति से अधिक काम लेते हैं।'

मानाभगत के पास प्रागजी के हृदय में प्रकट हो रही दिव्य ज्योति को देखने के लिए दृष्टि नहीं थी। अत: स्वामी ने उनसे कहा, 'मैं इससे पत्थर भी उठवाऊँगा और भगवान का साक्षात्कार भी करवा दूँगा।' यह सुनकर मानाभगत मौन रह गए।

8. संतत्व की कला

एकबार स्वामी सांखड़ावदर के घास के मैदान में जाते समय मार्ग में स्थित मालिया गाँव में ठहर गए। मन्दिर की अमराई में उनका पड़ाव था। यहाँ आम के वृक्ष सूख रहे थे। स्वामी ने यह देखकर इतना कहा, 'ये आम के वृक्ष सूख रहे हैं।'

प्रागजी भक्त ने जैसे ही यह सुना, वे तुरन्त दो घड़े लेकर नदी की ओर चल दिए। वहाँ से पानी भर-भर कर आम के वृक्षों को सींचने लगे। लगभग तीन सौ आम के वृक्षों को उन्होंने चार-चार घड़े पानी से सींचा। प्रागजी भक्त का सारा शरीर पानी और पसीने से लथपथ हो गया था। उनके वस्त्रों से भी पानी चू रहा था। उसी अवस्था में वे स्वामी के पास आ पहुँचे।

उस समय स्वामीजी सभा में ज्ञानवार्ता कर रहे थे। परंतु प्रागजी के आते ही कथा समाप्त हो गई। फिर भी स्वामीजी ने प्रागजी भक्त को लाभ देने के आशय से कहा, 'कुछ प्रश्न तुम भी पूछ लो।' स्वामीजी, प्रागजी को यह अवसर देकर सिद्ध करना चाहते थे कि वे उनकी भक्तिमय सेवा से अत्यन्त प्रसन्न थे।

पूर्ण निर्दोषभाव से प्रागजी भक्त ने स्वामी से पूछा, 'स्वामी, इस लोक के सभी हुनर मुझे आते हैं, किन्तु कृपा करके संतत्व की कला सिखाएँ।'

प्रागजी के मुख से शास्त्रों के साररूप प्रश्न को सुनकर पूरी सभा स्तब्ध रह गई। स्वामीजी प्रसन्न होकर बोले, 'संतत्व की कला बड़ी कठिन कला है। संत मान-अपमान में समता रखते हैं। वे किसी के प्रति बुरा भाव नहीं

रखते। वे पंच-इन्द्रियों के विषयों की आसक्ति को जीतकर अपनी वृत्ति आत्मा की ओर पलट लेते हैं तथा ब्रह्मरूप होकर श्रीहरि की मूर्ति में निमग्न रहते हैं; यही संतत्व की कला है। जिसने यह हुनर सीख लिया, वह भगवान से दूर नहीं होता। वह भक्त अनन्त जीवों के दोष दूर करके, उन्हें भगवान के साथ जोड़ देने में समर्थ होता है।'

सारी सभा स्वामी की दिव्य वाणी में भाव-लीन हो गई। मनजी

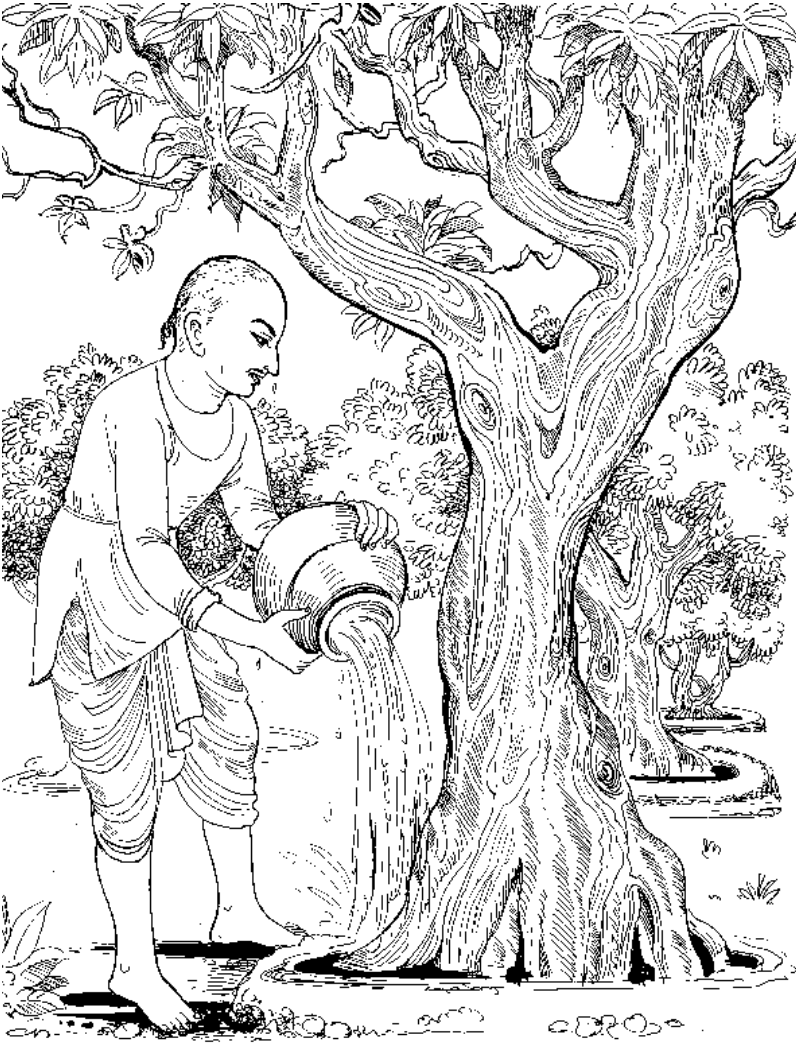

ठक्कर और नथू पटेल ने स्वामी से कहा, 'स्वामी! आपने तो आज प्रागजी पर क्या खूब प्रसन्नता बरसायी !'

'क्यों नहीं बरसायेंगे? यह मेरी मर्जी के अनुसार शरीर की परवाह किए बिना दिन-रात सेवा करता रहता है, तो मेरी प्रसन्नता क्यों नहीं होगी?' इस प्रकार स्वामी की कृपा से प्रागजी जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति, तीनों अवस्थाओं में अखण्ड रूप से भगवान के स्वरूप में निमग्न रहने लगे।

9. थूहर पर केले

एकबार जब स्वामी गोंडल के ज़मींदार दरबार अभयसिंहजी से बोले कि 'दरबार! तुमने केले के पेड़ पर तो केले अवश्य देखे होंगे, परन्तु यहाँ तो थूहर पर केले उग रहे है!' अभयसिंहजी स्वामी की वाणी का रहस्य नहीं पा सके। वे प्रश्नार्थ दृष्टि से देखते रहे, तब स्वामी ने प्रागजी की और संकेत करके कहा, 'देखिए वह लड़का, जो चूना पीस रहा है, वह है, तो एक साधारण दर्जी का पुत्र। पर उसने तो योगियों को भी दुर्लभ ऐसा योग सिद्ध कर लिया है। यह तो जीव की तीन अवस्थाओं - जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में भी अखण्ड भजन करता है।'

प्रागजी भक्त की अपार सेवा से अभयसिंहजी परिचित थे। उन्होंने कहा, 'स्वामी, वास्तव में आपने उसकी सेवाओं का फल दे दिया है।'

स्वामी ने कहा, 'उसे तो सेवाओं का फल देना अभी बाक़ी है। वह अनादि समय से हमारा भक्त है। अन्यथा अन्य किसी से भी इस तरह सेवा नहीं हो सकती।' इस तरह स्वामी हमेशा प्रागजी भक्त की महिमा कहते रहते थे।

पुष्पदोलोत्सव के अवसर पर स्वामी ने हज़ारों संतों-हरिभक्तों के सामने भगवान स्वामिनारायण के दिव्य अभिप्राय तथा संत महिमा की अद्‌भुत बातें कहीं। तत्पश्चात् उन्होंने सबको फगवा (प्रसाद-चने, दलिया और खजूर) वितरित किया। जब प्रागजी भक्त वहाँ नहीं दिखाई दिए, तो स्वामी ने उन्हें बुलवाया। जब वे आए, तो कुछ बची-खुची ठुर्री (जो दाना भूनने पर फूलते नहीं, उसे ठुर्री कहते हैं) प्रसाद में मिली। प्रागजी इस प्रसाद को पाकर बहुत प्रसन्न हुए।

मनजी ठक्कर प्रागजी भक्त की प्रसन्नता देखकर विस्मित हो गए कि प्रागजी भक्त केवल बची-खुची ठुर्री से ही इतने खुश क्यों है?

साक्षात् गुणातीत द्वारा दी गई प्रसादी की महिमा प्रकट करने के लिए प्रागजी भक्त स्वामी के पास आए और पूछने लगे, 'स्वामी! क्या यह प्रसाद आपने सचमुच प्रसन्नता से दिया है?' स्वामी ने कहा, 'प्रसन्नता से ही तो दिया है।'

तब ज्वार के एक दाना अपने मुँह में रखते हुए प्रागजी भक्त ने पूछा, 'तो स्वामी! क्या मैंने काम को जीत लिया?' 'हाँ।' स्वामी ने कहा।

इसके पश्चात् प्रागजी भक्त एक के बाद एक दाने मुख में रखते गए और पूछते रहे, 'स्वामी! क्या मेरे सभी दोष मिट गए?'

'हाँ मिट गए।' स्वामी ने हँसते हुए कहा। फिर कहने लगे 'विठ्ठलनाथजी के प्रसाद के आधे तिल के दाने से यदि चौरासी वैष्णव बन सकते हैं, तो यह तो महाप्रसाद है। प्रागजी निर्दोष है और उसके हृदय में सत्पुरुष के सम्बंध में आनेवाले रजकण की भी अत्यंत महिमा है।'

10. साक्षात्कार

साढ़े तीन वर्ष तक प्रागजी भक्त ने तन-मन को न्योछावर करके स्वामी की सेवा की थी और स्वामी ने भी दिव्य-कृपावर्षा से उनको कृतकृत्य कर दिया था। प्राप्ति की प्रतीति कराने के लिए स्वामी ने प्रागजी भक्त से कहा कि तुम नौ दिन तक एकान्त में जाकर ध्यान लगाओ। प्रागजी भक्त एकांत में चले गए।

नौ दिनों के पश्चात् स्वामी ने आकर पूछा, 'तुम्हें कुछ दिखाई देता है?'

ध्यान में उन्हें स्वामी की मूर्ति दिखाई देती थी, जो एक क्षण के लिए भी दूर नहीं होती थी। स्वामी ने कहा, 'अब सावधान रहना।'

दसवें दिन रात्रि के समय प्रागजी को ध्यान में अतिशय प्रकाश दिखाई दिया। उसमें से भगवान स्वामीनारायण की दिव्य मूर्ति प्रकट हुई। परंतु श्रीहरि ने गेरुए वस्त्र धारण किए हुए थे। उनकी अलौकिक मूर्ति देखकर प्रागजी भक्त की आँखों से हर्षाश्रु बहने लगे। अंत:करण में असीम आनन्द छा गया। वे बहुत देर तक यह दर्शन करते रहे।

ऐसी दिव्य अनुभूति से प्रागजी भक्त गद्गद हो गए। उन्होंने श्रीहरि की स्तुति करके कहा, 'हे स्वामी! हे महाराज! आपने मुझे कृतार्थ किया है। आपकी महान कृपा के लिए मैं अपने भावों को किस प्रकार व्यक्त करूँ, यह मैं नहीं जानता। हे स्वामी! मैंने ऐसी कोई साधना नहीं की है, फिर भी हे करुणानिधि! आपने मुझे साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया।'

श्रीहरि ने यह सुनकर मुस्कराते हुए कहा, 'स्वामी के आशीर्वाद से तुम्हें यह आनंद प्राप्त हुआ है।' इतना कहकर श्रीहरि अदृश्य हो गए, किन्तु उस क्षण से प्रागजी भक्त हमेशा अपने हृदय में भगवान की मूर्ति देखने लगे।

जब स्वामी वहाँ पधारे, तो कृतकृत्य होकर प्रागजी उनके चरणों में गिर गए। उन्होंने पूछा, 'श्रीहरि ने दिव्य दर्शन तो दिए, परन्तु उन्होंने साधु के वस्त्र क्यों पहन रखे थे?'

स्वामी ने कहा, 'वह तो साधुरूप में प्रकट हुए थे। किन्तु यह देख।' इतना कहकर स्वामी ने जैसे ही हाथ ऊपर उठाया, उनकी कृपादृष्टि से श्रीहरि की मूर्ति पुनः दिखाई देने लगी। उन्होंने अक्षरधाम में दिव्य जरीदार वस्त्र तथा आभूषण धारण कर रखे थे। उनकी मूर्ति तेजोमय थी।

श्रीहरि ने प्रागजी से कहा, 'मैं स्वामी के वश में रहता हूँ और तूं ने स्वामी को वश में कर लिया है, अतः आज से मैं तुम्हारे वश में भी हूँ।'

प्रागजी भक्त के आनन्द की सीमा न रही। लोगों को स्वामी की अपरंपार महिमा बताने के लिए वे अधीर हो उठे।

इस तरह स्वामी ने तीन वर्ष पहले दिए गए वरदान को आज पूर्ण किया।

प्रागजी की भक्ति अब पूर्ण हो चुकी थी। उनके अंतःकरण में ब्रह्मरस लबालब भर गया था। स्वामीजी अपना ऐश्वर्य प्रागजी भक्त द्वारा प्रकट करने लगे। वे कहते, 'यह प्रागजी इतनी सारी सेवा करता है तथा निरंतर भजन करता है, अतः उसकी इच्छा नहीं होगी, तो भी लोग उसको गुरु करेंगे।' इतना कहकर अपने आश्रितों के गुरुपद पर उन्होंने प्रागजी भक्त को नियुक्त कर दिया। भक्तों को उपदेश देकर तथा अपराधों का प्रायश्चित्त देकर उन्हें शुद्ध करने की आज्ञा दी। संप्रदाय में अपने अक्षरब्रह्म के स्वरूप को समझाकर सभी जीवों को अभयदान देने का भी आदेश दिया।

पारस के संग में स्वर्ण बनकर प्रागजी निर्भय हो चुके थे। उन्होंने लोगों को समझाना प्रारम्भ किया कि 'ये गुणातीतानन्द स्वामी स्वंय अक्षरब्रह्म हैं तथा श्रीहरि का दिव्य-धाम हैं।' वे अन्तर्यामीरूप से लोगों के आंतरिक दोषों को जानकर स्वामी के पास लाते और उन्हें प्रायश्चित्त दिलवाते थे। इसके साथ ही उनका कल्याण भी करवा देते। इस प्रक्रिया के अंतर्गत संप्रदाय में यह बात फैल गई कि स्वामी ने प्रागजी भक्त के वश में हो चुके हैं।

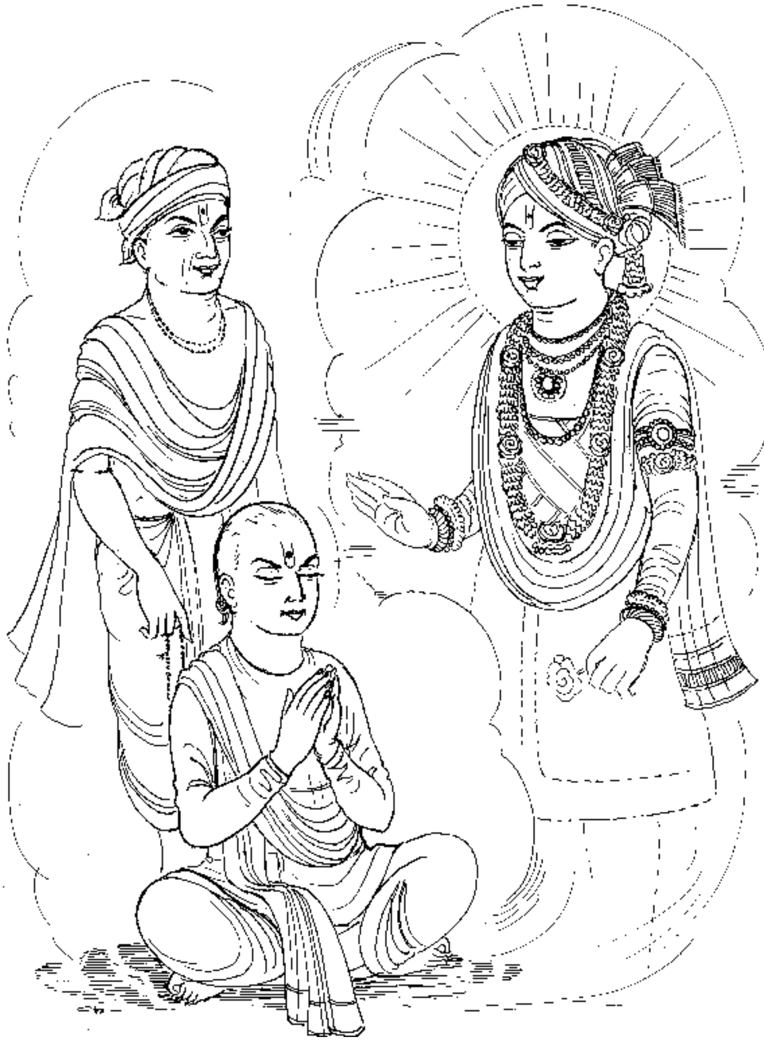

एक दिन अचानक प्रागजी को खबर मिली की महुवा में उनके अपने पिता का देहोत्सर्ग हो गया है। घर जाने की अनिच्छा होने पर भी स्वामी की आज्ञा से वे चार वर्ष बाद महुवा लौटे। यहाँ आकर वे मन्दिर में निवास किए। स्थानीय हरिभक्तों को स्वामी की महिमापूर्ण बातें सुनाकर, वे सभी के अंदर स्वामी के स्वरूप में आत्मबुद्धि दृढ़ करवाते रहे।

11. अक्षरधाम की कुंजी प्रागजी के पास

स्वामीजी की आज्ञानुसार प्रागजी भक्त अपनी ज्ञानवार्ता से सत्संगियों को श्रीहरि के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान देते तथा गुणातीतानंद स्वामी के अक्षरब्रह्म होने का निश्चय भी करवाते।

उत्सवों के अवसर पर, स्वामी की आज्ञा से प्रागजी भक्त जूनागढ़ मन्दिर के चौक में मंडप में बैठकर दिन भर सत्संग की बातें करते रहते। स्वामी भी हरिभक्तों से कहते कि 'अब तो मैं निवृत्त हूँ और पेन्शन पर हूँ। यदि आप उपदेश सुनना चाहते हैं, तो चौक में बैठे हुए प्रागजी भक्त के पास जाओ।' इस तरह प्रागजी भक्त उनकी आध्यात्मिक प्यास बुझाते और सभी के अंत:करण को शांत कर देते थे।

एकबार वरताल से कोठारी अमईदास, कोठारी बेचर भगत तथा कुछ पार्षद, स्वामी के सत्संग एवं सौराष्ट्र के पंचतीर्थ करने के लिए जूनागढ़ आए थे। स्वामी ने उनको बहुत सत्संग लाभ दिया। बातों के बीच वे कहने लगे, 'कोठारीजी! अब मैं निवृत्त हो गया हूँ, मैंने तो सारी कुंजियाँ प्रागजी को दे दी हैं।'

यह सुनकर अमईदास को एक धक्का-सा लगा। वे सोचने लगे कि स्वामी ने क्या इस मन्दिर की चाभियाँ प्रागजी भक्त को दे दी हैं?

उनके मनोभावों को ताड़कर स्वामी कहने लगे, 'अमईदासजी! आप चिन्ता मत कीजिए, मन्दिर की चाभियाँ तो ये रहीं मेरे पास, परन्तु अक्षरधाम की चाभी मैंने प्रागजी को दे दी हैं।'

जब यह समाचार वरताल तक पहुँचा, तो लोग कहने लगे कि 'जूनागढ़ में प्रागजी ही मालिक बन बैठा है और स्वामी भी उसके वश में हो चुके हैं। पूरे सौराष्ट्र के हरिभक्त मंदिर में आते ही सबसे पहले प्रागजी

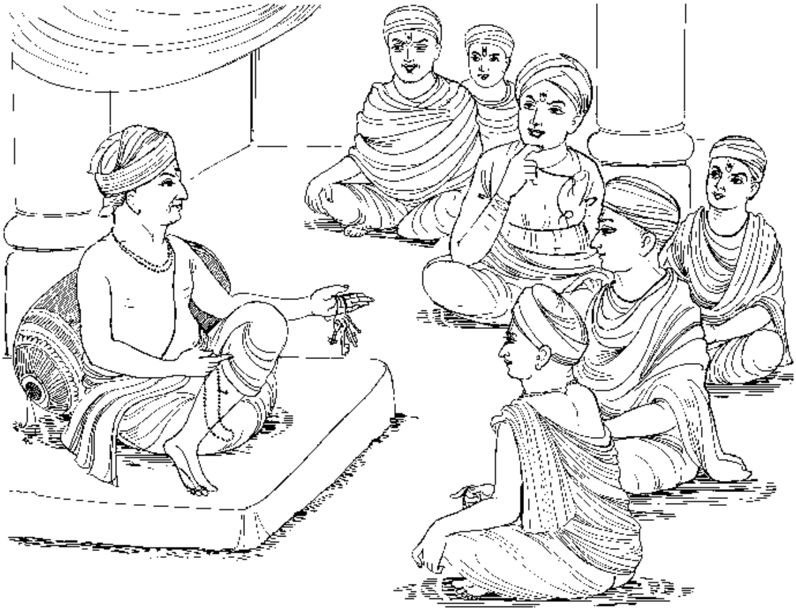

भक्त को दण्डवत् प्रणाम करते हैं, तत्पश्चात् स्वामी के पास जाते हैं। प्रागजी भी स्वामी की महिमा बढ़ा-चढ़ाकर सुनाता ही रहता है।

एकबार कुछ सत्संगी दरबारों ने कहा, 'स्वामी! आपने अपना ऐश्वर्य किसी ब्राह्मण, साधु अथवा किसी विद्वान को क्यों नहीं दिए? इस दर्जी को क्यों दिए?'

स्वामी मुस्कराकर कहने लगे, 'मुझे, उसको ही अपना ऐश्वर्य कहाँ देना था? लेकिन प्रागजी ने अपनी विशुद्ध सेवा एवं भक्ति से मुझे जीत लिया है, अत: उसको, मैं अपना सर्वस्व देने के लिए मजबूर हो गया!'

दरबार ने कहा, 'तो अब अपने ऐश्वर्य को वापस ले लीजिए!'

स्वामी यह सुनकर स्वामीजी ने कुछ कठोर स्वर में कहा, 'वापस ले लेना कोई बच्चों का खेल नहीं है, इसकी जड़ें तो पाताल तक चली गई हैं।'

इतना कहकर वे एक उपनिषद्-कथा कहने लगे, 'वैशम्पायन ऋषि ने याज्ञवल्क्य को विद्या सिखाई थी। एक दिन वैशम्पायन ने याज्ञवल्क्य को आदेश देकर कहा, 'अपने राज्य के राजा को कोई सन्तान नहीं है, तुम उसके महल में जाओ।' परन्तु, ब्रह्मचारी के लिए यह उचित नहीं है, ऐसी

शिक्षा याज्ञवल्क्य ने पायी थी, उन्होंने गुरु को विनम्रतापूर्वक मना कर दिया। गुरु ने क्रोधित होकर कहा, 'यदि ऐसा ही है, तो लाओ, मेरी विद्या वापस कर दो।' किन्तु सिद्ध हो चुकी विद्या कोई वापस लौटा सकता है क्या? वे याज्ञवल्क्य से विद्या नहीं ले सके। उसी प्रकार मैंने भी प्रागजी को ब्रह्मविद्या पढ़ाई है, वह अब वापस नहीं ली जा सकती।' उन्होंने पुनः कहा, 'जिसे विद्या देने की कला आती है, उसे ब्रह्मविद्या देने की पात्रता तैयार करना भी आता होगा न? भगवान तथा संत किसी की जाति, आश्रम अथवा सामाजिक स्थिति कभी नहीं देखते।'

सामान्य लोगों के लिए प्रागजी भक्त एक निम्न वर्ग के साधारण मनुष्य थे। किन्तु भगवद्‌भक्त के लिए वे साक्षात् भगवत्-स्वरूप संत थे।

12. अक्षरज्ञान का उद्‌घोष

एकबार स्वामी वरताल से लौटते हुए सारंगपुर में रुके। यहाँ भक्तराज वाघाखाचर ने स्वामीजी से कहा, 'मुझे नींद में भयंकर स्वप्न आते हैं। पूरी रात डर से काँपता रहता हूँ।' यह सुनकर स्वामी ने कहा, 'आप मेरे साथ जूनागढ़ चलिए, सब ठीक हो जाएगा।'

परंतु वाघाखाचर सेवक के बिना नहीं रह सकते थे। अतः स्वामी ने प्रागजी भक्त को उनकी सेवा में रहने का आदेश दिया। प्रागजी बड़ी लगन से उनकी सेवा करते और स्वामी की महिमा भी समझाते। परन्तु वाघा खाचर उनसे हमेशा कुढ़ते ही रहते थे। एक बार चिढ़कर उन्होंने प्रागजी भक्त को अपनी सेवा से हटा दिया। परिणाम स्वरूप अब उनको अपनी सेवा स्वयं ही करनी पड़ी। उनका कष्ट देखकर स्वामीजी, उन्हें समझाने लगे कि वे अपनी सेवा में प्रागजी भक्त को पुनः रख लें। प्रागजी को बात करने से मना दिया जाएगा। फलस्वरूप प्रागजी पुनः सेवा में लग गये, परन्तु बापू ने उनकी बातें सुनना छोड़ दिया था।

जब संघ जूनागढ़ पहुँचा, तो वाघाखाचर ने वहाँ देखा कि स्वामी के सभी प्रेमी भक्त आनन्द-किलोल कर रहे हैं। उन्होंने सोचा कि अकेला मैं ही इस आनन्द से क्यों वंचित हूँ?

एक दिन उन्होंने अपनी समस्या महुवा के दामा सेठ को बतलाई।

दामा सेठ ने कहा, 'आप प्रागजी की बातों में विश्वास कीजिए और स्वामी स्वयं मूल अक्षरब्रह्म हैं, ऐसा स्वीकार कीजिए।'

'परंतु जब तक स्वामीजी स्वयं मुझसे नहीं कहेंगे, मैं विश्वास नहीं कर सकता।' वाघा खाचर ने कहा।

यह सुनकर प्रागजी भक्त ने अपनी चित्तवृत्ति जोड़कर स्वामी को वहीं बुला लिया।

स्वामी सभा को छोड़कर एक भक्त के साथ बाड़ी में आ पहुँचे। प्रागजी भक्त ने स्वामी से कहा, 'वाघा बापू, आपसे एक प्रश्न पूछना चाहते हैं।'

स्वामी ने वाघा बापू से कहा, 'बापू, प्रागजी आपसे जो कुछ कह रहा है, वह सत्य है।' किन्तु वाघाखाचर, स्वामी के उत्तर से संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सीधा प्रश्न किया, 'स्वामी! क्या आप स्वयं अक्षरब्रह्म हैं?'

स्वामी ने मुस्कराते हुए कहा, 'हाँ।' उसी पल वाघा खाचर का अंत:करण शान्त हो गया और उनके सारे दोष मिट गए।

स्वामी की महिमा अक्षरब्रह्म के रूप में प्रसिद्ध करने में प्रागजी भक्त को अनेक कष्ट और अपमान सहने पड़े। परन्तु मूर्तिमान अक्षरब्रह्म का साक्षात्कार होने पर वे मौन कैसे रह सकते थे?

एकबार प्रागजी भक्त सो गए थे। स्वामी ने उनको बुलाने के लिये बालमुकुन्ददासजी को भेजा। उन्होंने दो-तीन बार पुकारा कि 'प्रागजी, जागो, तुम्हें स्वामी बुला रहे हैं।' परंतु वे नहीं उठे। बालमुकुंददासजी स्वामी के पास आकर कहने लगे, 'मैंने उनका नाम ले-लेकर पुकारा, पर वे नहीं जागे।' स्वामीने मुस्कराकर कहा, 'फिर जाओ और उसे कहो, गुणातीत जागो।'

बालमुकुन्ददासजी ने जाकर एक ही बार पुकारा : 'गुणातीत जागो।'

प्रागजी भक्त तुरन्त उठ बैठे और स्वामी के पास आ पहुँचे। जो वहाँ उपस्थित थे, उन सबको स्वामी ने कहा, 'प्रागजी तो मर गया। वह तो गुणातीतरूप बन गया है।'

इस तरह स्वामी प्रागजी भक्त की महिमा बढ़ाते रहते थे।

एकबार प्रागजी भक्त उना के कमा सेठ से स्वामी की महिमा कहने लगे। परंतु सेठजी को इतना गुस्सा आया कि उन्होंने प्रागजी को एक चाँटा जड़ दिया। उसी रात श्रीहरि उनको स्वप्न में दिखाई दिए और कठोर वाणी

में कहा, 'तुमने प्रागजी भक्त को चाँटा क्यों मारा? उठकर उनसे क्षमा-याचना करना।' कमा सेठ का हृदय भय से धड़कने लगा।

कमा सेठ सुबह होने की प्रतीक्षा करने लगे। दूसरे दिन सेठजी सभा में पहुँचे और प्रागजी भक्त के समक्ष भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। बार-बार उनकी क्षमायाचना करने लगे और चरणस्पर्श करके उनको एक धोती अर्पण की।

स्वामी की आज्ञा से प्रागजी भक्त हरिभक्तों को ज्ञानवार्ता सुनाते और प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करते। एकबार उन्होंने स्वामी से पूछा, 'जब तक आप विद्यमान हैं, आप हरिभक्तों को पापमुक्त करके शुद्ध करते हैं, परन्तु बाद में क्या होगा?'

स्वामी ने कहा, 'अब तो महाराज स्वयं तुम्हारे वश में हैं, तुम्हारे वचन से सभी शुद्ध हो जाएँगे।'

एकबार जूनागढ़ मन्दिर के कोठारी त्रिकमदासजी, प्रागजी भक्त के मुँह से स्वामी की महिमा सुनकर सहन नहीं कर पाए। आवेश में आकर उन्होंने प्रागजी भक्त से कहा, 'आईन्दा ऐसी बातें करोगे, तो कोई तुम्हारी पिटाई कर देगा।'

जब स्वामी को इस घटना का पता चला, तो वे त्रिकमदास को कोठार में ले गए और कहा, 'क्या तुम दिव्य-अलौकिक तेज देखना चाहते हो?' इतना कहकर उन्होंने अपने हाथ फैलाए, उसी पल दिव्य तेज से सारा कोठार देदीप्यमान हो उठा। और वह प्रकाश संकुचित होता हुआ स्वामी के स्वरूप में समा गया। कोठारी त्रिकमदास यह देखकर दिग्मूढ़ हो गये। उनके हृदय में स्वामी के मूल अक्षरब्रह्म होने का निश्चय हो गया।

इस प्रकार प्रागजी भक्त ने अनेक संत-हरिभक्तों को स्वामी के मूल अक्षरस्वरूप का निश्चय करवाया था।

13. विरोध का आरम्भ

गुणातीतानंद स्वामी के अक्षरब्रह्म होने की बातों में बड़े-बड़े संतों को भी विश्वास नहीं होता था। परन्तु स्वामी के आशीर्वाद से प्रागजी भक्त का प्रताप दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। इसी के साथ विरोधियों की संख्या भी

बढ़ने लगी। जूनागढ़ के उत्सव में वरताल से विहारीलालजी महाराज के साथ शुकमुनि, पवित्रानन्द स्वामी आदि बड़े-बड़े सद्‌गुरु पधारे थे।

इस उत्सव में प्रागजी भक्त हज़ारों हरिभक्तों को ज्ञानवार्ता से अध्यात्म मार्ग की ओर प्रेरित कर रहे थे। आधी रात तक उनके आसन पर ज्ञानगोष्ठी होती रहती थी। पवित्रानन्द स्वामी का आसन निकट में ही था। प्रागजी गोष्ठी के समय हरिभक्तों को बार-बार अक्षर की बात दोहरा रहे थे। जब पवित्रानन्द स्वामी ने प्रागजी के मुख से अक्षर की अपार महिमा सुनी, तो वे क्रोधित होकर कहने लगे, 'अरे ओ प्रागजी! रात काफी बीत गई है। अक्षर का गीत गा-गाकर क्यों परेशान कर रहे हो?' यह सुनकर प्रागजी भक्त उनके निकट आकर कहने लगे, 'स्वामी, गुणातीतानन्द स्वामी प्रकट अक्षरब्रह्म हैं, इस बात को स्वीकार किए बिना छुटकारा नहीं है।'

पवित्रानन्द स्वामी यह सुनकर तिलमिला उठे और अपनी लाठी को धरती पर पटकते हुए बोले, 'मुझे समझाने वाला तू कौन है? क्या तुम अपने आपको बहुत बड़ा समझते हो? मैं तुम्हें देख लूँगा। तुम्हें सत्संग से बाहर निकाल कर ही रहूँगा।' स्वामी को क्रोधित देखकर प्रागजी भक्त मुस्कराते हुए बोले, 'स्वामी, अब तो श्रीहरि स्वयं आकर भी मुझे विमुख नहीं कर सकते! पारसमणि के स्पर्श से एकबार जो लोहा स्वर्ण बन गया, वह, उसी मणि के स्पर्श से पुनः लोहा नहीं बन सकता।'

दोनों के बीच वार्तालाप चल ही रहा था कि गुणातीतानन्द स्वामी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने प्रागजी भक्त को आदेश दिया कि तुम पवित्रानन्द स्वामी से क्षमा माँग लो। पवित्रानन्द स्वामी इस क्षमायाचना से शान्त हो गए। फिर भी वे इतने व्यग्र थे कि उन्होंने चुनौती देते हुए कहा, 'मैं प्रागजी भक्त की सूरत भी देखना नहीं चाहता।' स्वामी, प्रागजी को साथ लेकर अपने आसन पर चले गए।

उत्सव के बाद स्वामी जूनागढ़ जिले में विचरण के लिए निकल पड़े। उपलेटा गाँव के हरिभक्तों ने स्वामी से पूछा, 'स्वामी! जब आप नहीं होंगे, तब हमारा क्या होगा? हमें एकान्तिक धर्म कौन सिद्ध करवाएगा? हम किसके सहारे रहेंगे?' यह सुनकर स्वामी कहने लगे, 'सुनो, एक दृष्टांत सुनाता हूँ। एक माली ने बड़े तुम्बे में मीठे अनार पकाए और राजा को भेंट

किया। इस उपहार को देखकर दरबार में बैठे हुए अधिकारी हँसने लगे। परंतु जब राजा के नौकरों ने तुम्बा फोड़ दिया, तब उसमें से मीठे अनार के दाने निकल पड़े। जिन्हें खाने पर सभी की जठराग्नि शांत हो गई। तुम्बे से निकले अनार के दाने देखकर सभी विस्मित हो गए। उसी तरह मैंने भी तुम्बे के समान साधारण पात्र में एकांतिक धर्म को धारण करनेवाले मीठे अनार जैसे एकांतिक सत्पुरुष तैयार किया है। जिनकी यथार्थ पहचान वे ही कर पाएँगे, जिनके हृदय शुद्ध हैं और जिनके बहुत जन्मों के संचित पुण्य हैं।' इस प्रकार उन्होंने प्रागजी भक्त की अपार महिमा कही।

एकबार स्वामी बैलगाड़ी में बैठकर जूनागढ़ से वंथली जा रहे थे। कुछ हरिभक्त उनके साथ बैलगाड़ी में बैठे थे, तो कुछ हरिभक्त पैदल चल रहे थे। स्वामी ने अचानक एक पार्षद को बुलाकर कहा, 'जाओ, प्रागजी को बुला लाओ। वह बेचारा थक गया होगा। उसे गाड़ी में बिठाएँगे।' जब प्रागजी भक्त स्वामी के पास आए, तो स्वामी ने उनको अपने साथ गाड़ी में बैठने के लिए कहा। प्रागजी प्रणाम करके कहने लगे, 'स्वामी, आपकी गद्दी से मुझे अनन्त सूर्यों का तेज प्रकाशित हो रहा दिखाई देता है, अतः मैं वहाँ नहीं बैठ सकता।' प्रागजी भक्त की ऐसी अनन्य महिमादृष्टि देखकर सभी हरिभक्त स्तब्ध रह गए।

प्रागजी भक्त के सत्संग से महुवा के हरिभक्तों के हृदय में भी स्वामी के अक्षर-स्वरूप की महिमा दृढ़ होने लगी थी। स्वामी भी महुवा के हरिभक्तों को ज्ञानवार्ता का अलौकिक आनंद दे रहे थे। एकबार स्वामी सभामंडप में बैठकर भक्तों के साथ पत्तियों के दोने बना रहे थे। अचानक महुवा के फूलचंद सेठ ने पूछा, 'स्वामी! इस समय अक्षरधाम (अक्षरब्रह्म) क्या कर रहा होगा?' स्वामी ने कहा, 'तुम्हारे साथ दोने बना रहा है!' इस तरह स्वामी कभी-कभी अपने स्वरूप की बातें भी किया करते थे।

14. सत्संग में कुसंग

संप्रदाय में गुणातीतानन्द स्वामी की महिमा, लोकप्रियता एवं उनका प्रताप बढ़ता जा रहा था। अतः कितने ही संतों के साथ-साथ आचार्य भगवत्प्रसादजी ने भी स्वामी को उलाहना देने का निश्चय किया। उन्होंने स्वामी

को संदेश भिजवाया की वे उना पधारें। यह संदेश पाकर स्वामी स्वत: गाने लगे

'भू को भार हरूँ सन्तन हित, करूँ छाया कर दोई ।
जो मेरे संत को रत्ती एक दूए, तेही जड़ डारूँ में खोई ॥
नारद, मेरे संत से अधिक न कोई ॥'

[भगवान नारदजी से कहते हैं, 'संतों के हित के लिए मैं सारी पृथ्वी का भार सहन करता हूँ। उनकी रक्षा करता हूँ। यदि कोई मेरे संतों को रत्ती भर भी दु:ख देगा, मैं उसे जड़मूल से नष्ट कर दूँगा। हे नारदजी, मेरे संतों से अधिक मुझे कुछ भी प्रिय नहीं है।]

यह सुनकर प्रागजी भक्त प्रार्थना करने लगे, 'स्वामी! अचानक इस भजन गाने का रहस्य क्या है?' स्वामी ने स्पष्टरूप से कहा, 'आज वरताल के संतों ने मुझे फटकारने का निश्चय किया है, क्योंकि तू मेरी बहुत महिमा कहता है। उन्होंने तुझे सत्संग से निकालकर विमुख कर देने का निश्चय किया है। किन्तु सोरठ में तो (जूनागढ़ जिला) कोई सफल नहीं होगा। अपनी आँखों के सामने मैं, तुम्हारा अपमान नहीं होने दूँगा। क्योंकि वह मुझ से सहन नहीं हो पाएगा।'

प्रागजी भक्त ने फिर कहा, 'स्वामी, मेरे ऊपर चाहे जितने भी संकट आ गिरे, परन्तु आप मेरे कारण इस लोक से उदासीन मत होना।'

उना जाते हुए स्वामी मालिया गाँव में रुके। वहाँ अचानक खबर मिली कि धोलेरा में भगवद्प्रसादजी के स्वजन कृष्णप्रसादजी का देहावसान हो गया है। इसलिए आचार्य महाराज तथा संतों को वापस लौटना पड़ा है। इस प्रकार से उना आकर स्वामी को उलाहना देने की लालसा उनके मन में ही रह गई।

संवत् 1922 (सन् 1856) में वरताल में चैत्री पूर्णिमा के उत्सव में जाने से पूर्व स्वामी ने भविष्य कथन कर दिया था कि 'प्रागजी पर दु:ख आने वाला है। परन्तु उसकी संपूर्ण रक्षा होगी। वैसे भी मैंने इसका कवच इस तरह गढ़ा है कि इसे कोई हानि नहीं पहुँचेगी।' स्वामी ने प्रागजी को अपने साथ वरताल नहीं ले गए।

रामनवमी की उत्सव सभा में कितने ही द्वेषी संतों-भक्तों ने स्वामी पर आक्षेपबाजी की, 'स्वामी को भगवान होना है, वे अपनी पूजा करवाते हैं, वे अपनी प्रासादिक चीज़ों की पूजा करवाते हैं।' आदि आक्षेपों के बाद भी

स्वामी शान्त और स्थिर रहे। जब उन लोगों ने अपना परिहास बंद किया, तो स्वामी अपने आसन से खड़े हुए और बुलंद स्वर में कहने लगे, 'भगवान तो हमारे लिए एक मात्र स्वामिनारायण ही हैं, दूसरा कोई नहीं। परंतु शास्त्रों में जिनको अक्षर कहा है, वह तो मैं हूँ।' फिर वे श्रीहरि की सर्वोपरिता की बातें तीव्र वेग के साथ कहने लगे।

इतने में बलरामदास शास्त्री झपटकर आचार्य भगवत्प्रसादजी के पास पहुँचे और संतों को शान्त करने के लिए कहा। वे सभा में उपस्थित हुए, तब सारी सभा शान्त हो गई। आरती का डंका बजा, सब आरती में शामिल होने के लिए चले गए।

मन्दिर दर्शन से लौटते हुए एक माली ने स्वामी को गुलाब के पुष्पों का सुंदर हार अर्पण किया। स्वामी ने देखा कि सामने ही शुकमुनि के सेवक स्वामी हरिस्वरूपदासजी आ रहे है, जिन्होंने अभी-अभी मेरा अपमान किया था। स्वामी मुस्कुराकर उनके सामने पधारे और वह पुष्पहार उनके गले में पहनाकर साखी कहने लगे -

हल्दी जरदी न तजे, खटरस तजे न आम।
गुणीजन गुणकुं नव तजे, अवगुण न तजे गुलाम ॥

[जैसे हल्दी अपना रंग नहीं छोड़ती और आम अपना खटास नहीं छोड़ता, उसी प्रकार से बुरा आदमी अपनी बुराई छोड़ता और गुणीजन अपने गुण नहीं छोड़ते।]

स्वामी की सहिष्णुता और सुहृदयता से हरिस्वरूपदासजी गद्‌गद हो उठे। इसके साथ ही बड़े-बड़े सद्‌गुरु तथा साधु मन ही मन पश्चाताप करने लगे। सभी ने स्वामीजी से क्षमायाचना की, फिर भी प्रागजी भक्त के प्रति उनका द्वेष बरकरार रहा। उन्होंने मिलकर प्रागजी को दण्डित करने का निश्चय किया, क्योंकि स्वामी की महिमा को जन-जन तक पहुँचाने का सबसे अधिक प्रयास प्रागजी भक्त ने ही किया था। सभी ने अपना निर्णय स्वामी को सुनाया, तो वे कुछ उदास होकर कहने लगे, 'प्रागजी अब मेरी महिमा नहीं कहेगा। मैं उसको आदेश दूँगा, तो वह जरूर मौन रहेगा।'

परंतु पवित्रानन्द स्वामी, प्रागजी भक्त को विमुख करने पर अड़े हुए थे। इसलिए आचार्य महाराज की अनुमति से सारे सत्संग में प्रागजी भक्त

को विमुख करार दिए जाने के पत्र भिजवा दिए गए।

जूनागढ़ लौटते समय खेड़ा जिले के महेलाव गाँव में स्वामी ने धोरीभाई के सवा वर्ष के पुत्र डुंगर भक्त (शास्त्रीजी महाराज) को आशीर्वाद दिया और कहा, 'यह बालक साधु बनेगा, श्रीहरि की सर्वोपरि निष्ठा का प्रसार करेगा तथा कथावार्ता करके सम्प्रदाय की अभिवृद्धि करेगा।'

तत्पश्चात् वे सारंगपुर, गढ़पुर होते हुए जूनागढ़ आ पहुँचे।

15. सत्संग से बहिष्कृत

प्रागजी भक्त को सत्संग से बहिष्कृत करने का पत्र जूनागढ़ आया, तो वे उसी दिन महुवा जाने को तैयार हो गए। वहाँ के भंडारी साधु ने द्वेष के कारण प्रागजी भक्त को मार्ग में खाने के लिए लड्डू तो दिए, परंतु ज़हर मिलाकर! मार्ग में प्रागजी भक्त ने ज़हरीले लड्डू अनजान में खा लिए और उनके शरीर में तीव्र जलन होने लगी। बाक़ी लड्डूओं को उन्होंने जंगल की भूमि में गाड़ दिया और बड़ी कठिनाई से महुवा पहुँचे। अपनी यौगिक शक्ति से उन्होंने ज़हर तो पचा लिया, किन्तु उनके सारे शरीर पर फफोले उभर आए और असह्य जलन होने लगी। उस समय स्वयं श्रीहरि ने उनको दर्शन दिए, अपना हाथ उनके शरीर पर फेरा और उड़द का पानी लेने का आदेश दिया। इस उपचार से कुछ समय के बाद वे स्वस्थ हो गए।

कुछ समय के बाद गुणातीतानंद स्वामी तथा आचार्य भगवत्प्रसादजी संतमंडल के साथ उना पधारे थे। प्रागजी भक्त उनके दर्शन हेतु उना जा पहुँचे। स्वामी एकान्त में मिलकर स्वामीजी ने उन्हें आश्वासन दिया और प्रसादी देकर प्रसन्न करके उन्हें वापस लौटाया।

यहाँ से स्वामी तथा आचार्य महाराज महुवा पधारे। हरिभक्तों ने भव्य स्वागत किया।

प्रागजी भक्त ने संघ के लिए उत्तम सीधा-सामग्री तैयार करके रखी थी। परंतु अन्य लोगों द्वारा मिली हुई सामग्री शुद्ध नहीं थी। अतः पवित्रानन्द स्वामी ने कहा, 'भले ही प्रागजी को बहिष्कृत किया गया हो, उनके द्वारा मिले दाल और चावल को कहाँ बहिष्कृत किया गया है? उसकी सामग्री उत्तम है, तो उसे स्वीकार कर लो।' प्रागजी भक्त ने अवसर देखकर इतनी

अद्‌भुत सेवा की थी कि सभी लोग, उनकी प्रशंसा करने लगे। इतने अपमान के बाद भी प्रागजी भक्त सेवा करते रहे हैं, यह देखकर महुवा के हरिभक्तों तथा आचार्य एवं संतों को उनके प्रति अत्यंत सद्‌भाव पैदा हुआ।

सभा में महुवा के कुछ प्रतिष्ठित हरिभक्तों ने भगवत्प्रसादजी से पूछा, 'यदि कोई धर्म विरुद्ध व्यवहार करेगा, तो उसे विमुख करना उचित है। परन्तु प्रागजी जैसे महान भक्त का इस तरह अपमान करना हमारी समझ में नहीं आता।'

यह सुनकर सभी सद्‌गुरु कहने लगे, 'आप चिंता मत करें; प्रागजी भक्त को हम सत्संग में वापस ले रहे हैं।'

गर्मी के दिन होने के कारण संतों के लिए शामियाने लगाए गये थे। परंतु प्रागजी भक्त शामियाने से बाहर तपती रेती पर बैठकर कथावार्ता सुनते और संध्या के समय कथावार्ता की समाप्ति के बाद घर लौटते। सभी संतों को प्रागजी भक्त की सत्संग करने की गरज़ देखकर आश्चर्य हो रहा था। एकबार तो प्रागजी भक्त स्वयं पवित्रानन्द स्वामी से मिले और उनको सत्संग में शार्मिल कर लेने के लिए निवेदन किया।

सात दिन तक संघ महुवा में रहा। प्रतिदिन गुणातीतानन्द स्वामी, प्रागजी भक्त से मिलते और आशीर्वाद देकर उन्हें कृतार्थ करते।

इसके तुरन्त पश्चात्, अयोध्याप्रसादजी के निमंत्रण पर स्वामी अहमदाबाद पधारे। यहाँ रामनवमी–श्रीहरि जयंती उत्सव की सभा में हज़ारों संत–हरिभक्त उपस्थित थे। स्वामी ने सभी को श्रीहरि की सर्वोपरिता विषय पर अद्‌भुत बातें सुनाईं। वरताल से भी भगवत्प्रसादजी तथा अनेक सद्‌गुरु पधारे हुए थे।

प्रागजी भक्त, अपने गुरु गुणातीतानंद स्वामी के दर्शन की अभिलाषा लिए अहमदाबाद आ पहुँचे। परंतु उनको मन्दिर के बाहर ठहरना पड़ा। जब स्वामी मन्दिर के बाहर पधारते, तब उनका दर्शन पाकर प्रागजी भक्त प्रसन्न हो जाते और एकत्र हुए लोगों से कहने लगते, 'देखो, देखो साक्षात् अक्षरब्रह्म जा रहे हैं।' इस तरह से वे अपने गुरु की महिमा का प्रचार शूरवीर होकर किया करते थे। गुणातीतानंद स्वामी, भंडारी से कहकर अपने शिष्य के लिए भोजन की व्यवस्था कर देते थे।

अहमदाबाद के आचार्य श्री अयोध्याप्रसादजी ने स्वामी की अपार सेवा करके उनकी प्रसन्नता प्राप्त की।

यहाँ से स्वामी नडियाद होकर वरताल पधारे। वरताल में हज़ारों हरिभक्तों ने स्वामी का भव्य स्वागत किया। उनका प्रेम, आदर तथा भक्ति अनन्य था। सैंकड़ों भक्तों ने स्वामीश्री का पूजन करके उनके चरणों में धोती आदि वस्त्र दान अर्पित किए। यहाँ सभी को ब्रह्मज्ञान देकर स्वामीजी जूनागढ़ वापस आए।

16. अब प्रागजी द्वारा मेरा प्राकट्य रहेगा

भीम एकादशी के उत्सव पर हज़ारों हरिभक्त जूनागढ़ पधारे हुए थे। चौक में प्रागजी भक्त द्वारा निर्मित शामियाने को देखकर स्वामी की आँखें छलछला गईं। अपने प्रिय शिष्य का स्मरण होते ही विह्वल होकर स्वामी के मुख से निकल पड़ा, 'अहो! उसने किसीका क्या बिगाड़ा था, जो उसे सत्संग से बाहर निकाला गया? उसे विमुख घोषित करनेवाले ही विमुख हैं।' स्वामीजी के असाधारण स्नेह की वर्षा प्रागजी भक्त पर निरन्तर होती रहती थी।

मन्दिर के कुछ काम जागाभगत को सौंपकर स्वामी गाँव में विचरण के लिए निकल पड़े। जूनागढ़ के नागर मुहल्ले की ओर पड़ते हुए मंदिर के द्वार पर आकर वे कुछ देर तक वहीं खड़े रहे। फिर मार्मिक वचन कहते हुए बोले, 'मैं इस स्थान पर चालीस वर्ष, चार महीने और चार दिन तक रहा। अब गाँव-गाँव विचरण करूँगा और महुवा जाकर रहूँगा।' स्वामीजी का स्पष्ट निर्देश यही था कि अब वे प्रागजी भक्त द्वारा सत्संग में सदैव प्रकट रहेंगे।

जूनागढ़ से वंथली, उपलेटा, पंचाला होकर वे गोंडल पधारे। यहाँ के महाराजा ने विशेष निमंत्रण देकर अपने राज-प्रासाद में स्वामी का भव्य स्वागत किया। राजकुमार भगवत्सिंहजी को वर्तमान धारण करवाकर स्वामी ने उनको बहुत आशीर्वाद दिया।

यहाँ के मंत्री माधवजी के घर रात्रि के 11 बजे वे पधरावनी के लिए पधारे। तत्पश्चात् आश्विन शुक्ल 13 को रात 12:45 बजे वे भौतिक शरीर से मुक्त होकर श्रीहरि की सेवा में बिराजमान हुए।

स्वामी के देहोत्सर्ग से प्रागजी भक्त को अत्यंत ही दुःख हुआ। सारा सत्संग गहरे शोक में डूब गया।

17. सत्संग में पुनः प्रवेश

प्रागजी भक्त तीन वर्ष तक सत्संग से बहिष्कृत रहे, किन्तु उनकी साधुता, उनके हृदय में लहराता हुआ दिव्यभाव तथा उनकी एकान्तिक स्थिति में तनिक भी अंतर नहीं पड़ा। यह देखकर बड़े-बड़े संत एवं सद्‌गुरु हमेशा प्रभावित होते रहे। ऐसे महान गुणों के कारण वे सभी के प्रिय होने लगे और सभी ने मिलकर उनको सत्संग में पुनः प्रवेश देने का निर्णय लिया। लोग उनकी अलौकिक ब्राह्मी स्थिति के कारण उन्हें 'भगतजी'[1] के नाम से पुकारने लगे। स्वामी के अक्षरनिवास के बाद भगतजी पवित्रानन्द स्वामी, भूमानन्द स्वामी, शुकानंद स्वामी आदि सद्‌गुरुओं के साथ विचरण करने लगे। इसके उपरांत भगवत्प्रसादजी की आज्ञा के अनुसार संप्रदाय के बड़े-बड़े उत्सवों में ज्ञानवार्ता करके हरिभक्तों की निष्ठा भी दृढ़ कराने लगे।

वरताल के समाहर्ता कोठारी गोवर्धनभाई के भतीजे गिरधरभाई मुमुक्षु प्रकृति के भक्त थे। ब्रह्मस्थिति सिद्ध करने के लिए वे 'वचनामृत' में प्रबोधित गुणातीत गुरु की खोज में थे। महान संतों की संगति के बाद भी वे इतने संतुष्ट नहीं हुए। आखिर वरताल में हरिकृष्ण महाराज (भगवान स्वामिनारायण) की मूर्ति के समक्ष एक पैर पर खड़े होकर, माला फेरना आरम्भ किया।

एक महीने के बाद श्रीहरि ने प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिया और कहा, 'वर्तमान समय में प्रागजी भक्त मेरे प्रिय एवं एकान्तिक भक्त हैं। उनके द्वारा मैं सत्संग में प्रकट हूँ। जाइए और उनकी संगत में रहकर ब्रह्मस्थिति सिद्ध करें, तभी मैं तुम्हारे अन्तर में अखण्ड निवास करके रहूँगा।'

परंतु गिरधरभाई को श्रीहरि के आदेश में ही संशय होने लगा कि 'एक सामान्य-सा दर्जी, परम एकान्तिक भक्त कैसे हो सकता है? मोक्ष के द्वार रूप सत्पुरुष केवल एक और वह भी प्रागजी भक्त? एक दर्जी? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।' गिरधरभाई ने भगतजी का आश्रय नहीं लिए और

1. इसके आगे हम भी प्रागजी के स्थान पर 'भगतजी' नाम का प्रयोग करेंगे।

पुनः एकबार तपस्या शुरू कर दिए। ठीक एक महीने के बाद श्रीहरि ने उनको पुनः दर्शन दिया और प्रागजी भक्त के पास जाने के लिए कहा।

गिरधरभाई भगतजी के पास आए और प्रथम दर्शन से ही उन्हें भगतजी की ब्रह्मस्थिति में विश्वास हो गया। भगतजी को गुरु के रूप में स्वीकार करके वे दिन-रात उनकी कथावार्ता सुनते और उनकी स्मृतियों में डूबे रहते। भागवती दीक्षा के बाद गिरधरभाई 'स्वामी विज्ञानदासजी' बन गए।

वरताल में बेचरभगत, कोठारी गोवर्धनभाई की सहायता किया करते थे। एकबार उन्होंने भगतजी को अपना कुर्ता सीने के लिए दिया। भगतजी ने जब कुर्ता तैयार कर दिया और बेचर भगत ने पहना, तो उनके बदन पर बिलकुल ठीक बैठ गया! बेचर भगत चकित रह गए, बिना माप लिए ही भगतजी ने यह कुर्ता तैयार कर दिया था। उनका आश्चर्य शांत होता उससे पहले भगतजी ने दूसरा झटका दिया और कहा, 'मैं तो देह को ढकने के लिए भी कुर्ता सी सकता हूँ तथा तुम्हारे अन्तःकरण का कुर्ता भी सी सकता हूँ। परन्तु इसके लिए तुम्हें मेरे आसन पर आना होगा।'

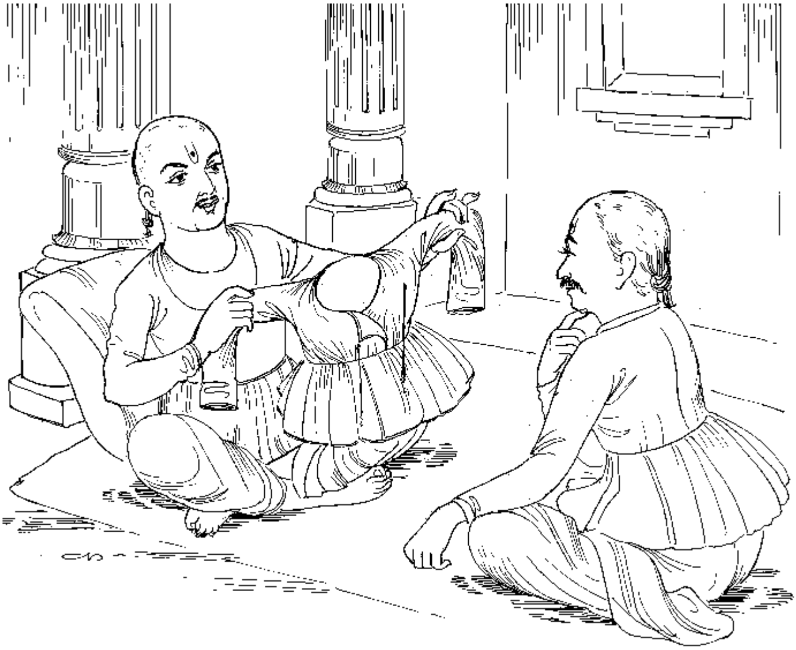

भगतजी की रहस्यमय वाणी सुनकर बेचर भगत के हृदय में उत्सुकता बढ़ने लगी। वे सत्संग के लिए भगतजी के आसन पर पधारे। वहाँ आत्मा-परमात्मा की बातें होने लगी। भगतजी के गहन ज्ञान और भक्ति से वे अत्यंत प्रभावित हुए। भगतजी का सत्संग रंग लाया। वे उनके शिष्य बन गए। इस तरह संप्रदाय के स्तंभ समान गुणवान सत्संगी भगतजी की आध्यात्मिक शक्ति की ओर खिंचने लगे ।

एक समय भगवत्प्रसादजी संतों के साथ आणन्द पधारे। प्रतिदिन संध्या आरती के बाद सभी मिलकर स्वामिनारायण मंत्र की धुन करते। एक दिन संध्या के समय पवित्रानन्द स्वामी ने धुनगान पर आपत्ति करते हुए उन्होंने कहा, 'श्रीहरि के समय से ही धुन बोलने की प्रचलित रीति 'नर-नारायण, स्वामिनारायण' की है। उसे क्यों तोड़ रहे हो?'

किन्तु युवा संतों ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे उल्टे तर्क-वितर्क करने लगे।

पवित्रानन्द स्वामी इस अपमान के कारण इतने बेचैन हो गए कि उनको बुखार चढ़ गया। वे तुरंत वरताल लौट गए। किन्तु यहाँ भी उनके मन को करार नहीं मिल रहा था। उन्होंने अपने सेवक द्वारा भगतजी को अपने आसन पर बुलाया और कहा, 'प्रागजी, अंतःकरण शांत हो, ऐसी कुछ बातें कर।' भगतजी ने 'वचनामृत' ग्रंथ से महत्त्वपूर्ण उपदेश सुनाकर पवित्रानन्द स्वामी के मन को शांत किया। उन्होंने कहा, 'यदि किसीने अपने अहं, ईर्ष्या, द्वेष आदि स्वभाव को नहीं जीता, आत्म-सत्तारूप होकर भगवान की भक्ति नहीं की तो सत्संग में उसकी कुरूपता अवश्य प्रकट हो जाएगी। आत्मसत्ता रूप होने के लिए अनादि अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी जैसे प्रकट संत में अखण्ड प्रीति करनी चाहिए।' इस तरह की बहुत सारी बातें सुनकर पवित्रानंद स्वामी प्रसन्न हुए।

उनको आज विश्वास हो गया कि भगतजी, गुणातीतानन्द स्वामी द्वारा गुणातीतरूप हो गए हैं और उनके आशीर्वाद से ब्रह्मस्थिति प्राप्त कर ली है। इस घटना के बाद ही स्वामी अक्षरनिवासी हो गए।

कुछ कारणवशात् कोठारी गोवर्धनभाई ने बेचर भगत को कोठार की कार्यवाही से मुक्त कर दिया। वे भगतजी के पास आ पहुँचे। भगतजी ने

उनको उलाहना देते हुए भगवान के भक्त की महिमा कही तथा गोवर्धनभाई से क्षमा माँगने के लिए आदेश दिया। भगतजी के प्रति अनन्य स्नेह के कारण बेचर भगत ने अहंकार का त्याग करके गोवर्धनभाई से क्षमा माँगी। भगतजी ने भी गोवर्धनभाई से कहा कि विहारीलालजी से दीक्षा दिलवाकर बेचर भगत को भागवती दीक्षा देने के लिए निवेदन है। इस प्रकार बेचर भगत त्यागी मंडल में प्रविष्ट हुए। लोग उनको 'महापुरुषदासजी' के नाम से पुकारने लगे।

वे व्यवहारिक उत्तरदायित्वों से मुक्त हो गए थे, अतः उन्होंने स्वयं को पूर्णतः भगवान के भजन में डुबो दिया...।

18. शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी के गुरुपद पर

संवत् 1939 (सन् 1883), सूरत के स्वामिनारायण मन्दिर में घनश्याम महाराज की मूर्ति-प्रतिष्ठा का उत्सव मनाया जा रहा था। भगतजी भी इस उत्सव में पधारे थे। वे मन्दिर के हाथी की झूल सीते हुए कथावार्ता सुनाते तथा भक्तों को अपनी अमूल्य आध्यात्मिक ज्ञान-निधि से आनन्दित कर रहे थे। शीघ्र ही उनके आसन पर सैकड़ों हरिभक्तों की भीड़ जमा होने लगी।

इस मंदिर के मुख्य संत स्वामी विज्ञानानन्दजी के शिष्य यज्ञपुरुषदासजी यहाँ सेवा के साथ शास्त्रों का अध्ययन भी कर रहे थे। भगतजी के दर्शन और उनकी कथावार्ता सुनकर वे तुरन्त भगतजी की ओर आकृष्ट हो गए। सिलाई करते हुए वे कथावार्ता भी कर रहे थे। यह देखकर यज्ञपुरुषदासजी को बड़ा आश्चर्य हुआ।

भगतजी ने उन्हें देखकर अंतर्यामीरूप से कहा, 'साधुराम, ज्ञानी के तो अनन्त नेत्र होते हैं। मैं सर्वत्र सबकुछ देखता हूँ।' ऐसी विलक्षण ब्रह्मस्थिति से संपन्न महापुरुष को देखकर यज्ञपुरुषदासजी ने मन ही मन उनको गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया।

भगतजी से उन्होंने पहली बार जाना कि गुणातीतानन्द स्वामी अक्षरब्रह्म हैं तथा श्रीहरि की निरंतर सेवा में रहते हैं एवं श्रीहरि के निवास के लिए अक्षरधाम भी वही हैं। उनके गुरु विज्ञानानन्द स्वामी, जो श्रीहरि के दीक्षित परमहंस थे। उन्होंने भी भगतजी की इस बात की पुष्टि की।

यज्ञपुरुषदासजी को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि श्रीहरि स्वयं यह चाहते थे कि यह रहस्य लोगों के सामने प्रकट किया जाए। उनके हृदय में भगतजी के प्रति अपार भक्तिभाव जाग उठा। वे भगतजी के दृढ़ शिष्य बन गए।

भगतजी भी अपने इस प्रिय शिष्य को देखकर कहते थे कि 'यह तो मेरा दुलारा लाल है।'

यज्ञपुरुषदासजी के सहयोगी संत रामरतनदासजी ने एकबार भगतजी से विनती करते हुए कहा कि मुझे यज्ञपुरुषदासजी के पास रखे हुए श्रीहरि के सुंदर चरण-चिह्न दिलवा दीजिए। मैं अपने पास जो चिह्न हैं, उसे मैं उनको दे दूँगा। भगतजी की आज्ञा से यज्ञपुरुषदासजी ने अपनी वह अमूल्य चीज़ उनको दे दी। जब विहारीलालजी को इस बात का पता चला, तो उन्होंने भगतजी से कहा, 'आपने यह काम अच्छा नहीं किया। यज्ञपुरुषदासजी मण्डल के मुख्य संत हैं, उनके पास श्रीहरि के चरणारविंद रखने की संप्रदाय की प्रथा है। अब उनके पास बिना चरण चिह्न के, साधु कैसे रहेंगे?' यह सुनकर भगतजी भावावेश में आकर कहने लगे, 'महाराज, उसकी चिंता आप मत करें। मैं उनको स्वयं चरणचिह्न देनेवाले भगवान स्वामिनारायण को ही दे दूँगा।'

उनकी ऐसी सामर्थ्य को देखकर सभी दिग्मूढ़ हो गए और भगतजी ने यज्ञपुरुषदासजी के साथ हुई अपनी विशेष प्रीति सभी के सामने व्यक्त कर दी।

धीरे-धीरे विज्ञानदासजी, यज्ञपुरुषदासजी, महापुरुषदासजी आदि संत साहस बटोरकर, निर्भय होकर भगतजी का सत्संग करने लगे। अपने शुद्ध धवल चरित्र के कारण इन संतों ने सारे सत्संग में भगतजी के शिष्य होने की प्रतिष्ठा बहुत ही कम समय में अर्जित कर ली। श्रीहरि की सर्वोपरिता और गुणातीतानन्द स्वामी के अक्षर स्वरूप की अद्‌भुत बातों के साथ उनकी ब्रह्मस्थिति के प्रभाव से सर्वत्र भगतजी की महिमा दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। विहारीलालजी भी उनकी कथावार्ता सुनना पसंद करते और उत्सवों में भगतजी को विशेष रूप से निमंत्रित करते।

भगतजी के साथ असाधारण रूप से जुड़े हुए संत अपने गुरु की महिमा सत्संग में प्रसिद्ध करते रहते थे। परंतु कुछ संत इसे सहन नहीं कर पाए। उन्होंने ऐसे संतों की शिकायत भगतजी से की। भगतजी ने उनका पक्ष लेकर अपने शिष्य संतों से उन लोगों की माफी भी मँगवाई थी।

नडियाद में एक दिन भगतजी मंदिर को जा रहे थे। उनके साथ में एक बारोट भक्त भी था। संकरी गली में एक हरिजन महिला उसी रास्ते से आ रही थी। उसको देखकर एक भक्त क्रोधित होकर बोला, 'वहीं खड़ी रह, देखती नहीं कि हम जा रहे हैं।'

उसके व्यवहार से भगतजी को बड़ा दुःख हुआ और कठोर शब्दों में उस भक्त से कहा, 'क्या इसके हृदय में भगवान नहीं हैं?' इतना कहकर उन्होंने समझाया कि 'जीव, प्राणी मात्र के प्रति हमें दया तथा आदर भाव रखना चाहिए।'

19. मैंने स्वामिनारायण को धारण किया है

जो साधु भगतजी के बढ़ते प्रताप को नहीं सह पाए, उन लोगों ने भगतजी तथा उनके शिष्य-संतों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने सत्संग में भगतजी के विचरण पर प्रतिबंध लगाने की माँग रखी। परंतु भगतजी खुमारी से कहते,

'मैंने तो स्वामिनारायण को धारण कर रखा है।' एकबार एक साधु ने टिप्पणी की, 'क्या भगवान भूत हैं, जो तुम्हें लग जाएँगे?'

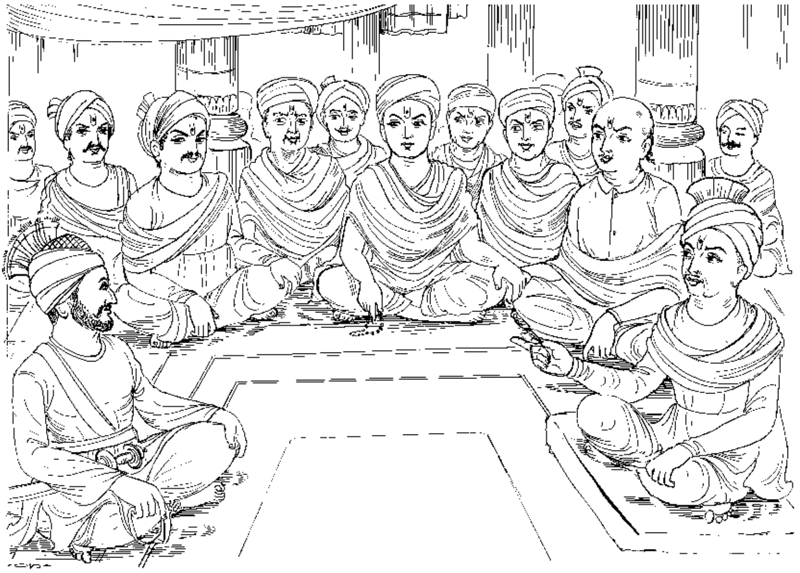

भगतजी कहने लगे, 'यदि भूत में किसी के साथ लग जाने की शक्ति है, तो क्या भगवान में नहीं है? भगवान कोई ऐरे–गैरे के हृदय में रहने के लिए नहीं आते। वे उन्हीं के हृदय में बिराजमान होते हैं, जो उनके साथ अतिशय स्नेह एवं आसक्ति रखते हैं।'

तत्पश्चात् वे गोपियों की प्रेमलक्षणा भक्ति की बातें कहने लगे। उन्होंने घोषणा की, 'स्वामी की कृपा से मैं श्रीहरि के अखण्ड आनंद का अनुभव करता हूँ। जो मेरा संग करते हैं, उन्हें यह अविनाशी सुख प्रदान करता हूँ।'

एकबार भगतजी पेटलाद के रावसाहब के अतिथि बने थे। रावसाहब का फौजदार एक मुसलमान मुमुक्षु था। वह भगतजी के दर्शन के लिए आया था। भगतजी ने उसके मन की बात को जानकर कुरान में बताए गए चार प्रकार के सत्पुरुषों के लक्षणों की बातें कही। फौजदार को बड़ी शान्ति का अनुभव हुआ। विज्ञानदासजी तथा अन्य संत वहाँ उपस्थित थे। संतों की ओर संकेत करते हुए भगतजी ने फौजदार से कहा, 'इन साधुओं को तो डपटना चाहिए, क्योंकि ये हमेशा मेरा पीछा करते रहते हैं।'

तब फौजदार ने संतों से कहा, 'आप तो खुदा के फकीर हैं और ये तो साक्षात् खुदा हैं! अत: यदि वे तुम्हें लाठी लेकर मारें या तुम्हें जूते से फटकारें, फिर भी तुम इनको छोड़ना मत, इनकी आज्ञा में ही रहना।' यह सुनकर भगतजी हँसने लगे।

पेटलाद में, भगतजी ने संतों को प्रसन्नता से अपने दर्शन, सत्संग तथा प्रसादी का लाभ दिया।

सूरत में विहारीलालजी के दर्शन करके वे नडियाद लौटे। उन्होंने संतों से कहा, 'इस बार आनेवाली आपदाओं को सहन करने के लिए तैयार हो जाओ, अपने अहं को जीतो और विरोध को धैर्य से सहन करो।'

20. भगतजी के संतों को कष्ट

गुजरात में भगतजी के विचरण से बहुत बड़ी संख्या में लोग उनके शिष्य बन गए। पीज के मोतीलाल को अखण्ड भजन की लगनी लग गई। श्रीहरि ने उनको स्वप्न में दर्शन दिया और कहा, 'मैं सत्संग में प्रागजी भक्त द्वारा प्रकट रहता हूँ।'

इस अलौकिक दर्शन का विवरण पत्र उन्होंने गाँव-गाँव में भेजा। इस पत्र के कारण सर्वत्र भगतजी का जयघोष होने लगा। भगतजी के सत्संग तथा दर्शन के लिए लोग उमड़ने लगे। कुछ द्वेषी संतों से भगतजी का जय-जयकार सहन नहीं हुआ। उन्होंने भगतजी के शिष्य-संतों को सत्संग से बहिष्कृत करवा दिया।

विज्ञानदासजी, यज्ञपुरुषदासजी तथा अन्य संत गुजरात के विचरण से लौटकर महुवा पधारे। प्रारम्भ में तो भगतजी ने उनकी उपेक्षा की, फटकारा भी। किन्तु बाद में गोपनाथजी मन्दिर में उनके निवास का प्रबंध कर दिया। सभी संत समय की अनुकूलता से स्वामिनारायण मन्दिर में दर्शन तथा भगतजी के सत्संग के लिए उपस्थित हो गए। भगतजी की कृपा से यज्ञपुरुषदासजी तथा पुराणी केशवप्रसाददास को स्वामिनारायण मन्दिर में रहने का अनुमति प्राप्त हुई। अत: दोनों को सारा दिन भगतजी के साथ रहने का अलभ्य लाभ प्राप्त हुआ।

मन्दिर में बड़ी संख्या में हरिभक्त कथावार्ता के लिए उपस्थित होते। एकबार यज्ञपुरुषदासजी ने मन्दिर में गढ़डा के संतों-भक्तों के समक्ष वचनामृत के विभिन्न प्रमाण देकर निरूपण किया कि भगतजी स्वयं श्रीहरि का स्वरूप तथा परम एकान्तिक संत हैं।

इस प्रकार भगतजी की अपार महिमा सुनकर विठ्ठलभाई ने पूछा, 'आपको भगतजी के इन दिव्यगुणों का पता कैसे चला?'

यज्ञपुरुषदासजी ने उत्तर दिया, 'ये आपके गाँव के हैं और आप इन्हें अच्छी तरह जानते हैं, अत: आप ही अपना अनुभव कहिए।'

विठ्ठलभाई कहने लगे, 'प्रागजी भक्त के समान धर्मनिष्ठ भक्तराज मैंने सारे गाँव में नहीं देखा। वे हमेशा उच्च वर्ण के भद्र एवं सम्भ्रान्त परिवारों की स्त्रियों के वस्त्र सीते हैं किन्तु उनके मन में कभी विकृति का प्रवेश नहीं होता है। वे तो सभी को श्रीहरि की महिमा समझाकर उनको सत्संगी बनाते हैं।'

गढ़डा के संतों ने भी इस बात का प्रमाण दिया कि 'प्रागजी भक्त के सत्संग से हमारे विकार भी शुद्ध हो रहे हैं, तो उनकी कोई विकार शुद्धि के विषय में क्या संशय?'

उस समय यज्ञपुरुषदासजी भी आगे कहने लगे, 'भगतजी आत्मज्ञानी

भी हैं। पूरा सत्संग एक स्वर से भगतजी के ज्ञानी होने का समर्थन करता है। उनका चाहे कितना भी मान हुआ हो अथवा अपमान हुआ हो, परंतु वे कभी मान के कारण उदासीन नहीं रहते तथा वचनामृत के सभी सिद्धांत उन्होंने गुणातीतानंद स्वामी के पास रहकर सिद्ध किया है। अत: हम कह सकते हैं कि वे यथार्थ रूप में ब्रह्मज्ञानी है।'

'तथा उनका वैराग्य भी इतना ही प्रेरक है। वे घर में रहने पर भी अतिथि की तरह अनासक्त रहते हैं। यदि वरताल से विहारीलालजी महाराज का आदेशपत्र मिल जाए तो उनको त्यागी होने में भी पलभर का विलंब नहीं होगा। यह तो उनके अपने वैराग्य की बातें हुई परंतु जो कोई उनका सत्संग करेगा, उनको भी वे अपनी ही तरह नि:स्पृही बना देते हैं। अन्यथा घर-संसार की परवाह किए बिना दूर-दूर से दौड़-दौड़कर हरिभक्त यहाँ तक क्यों आएँगे।'

यज्ञपुरुषदासजी ने इस प्रकार भगतजी के धर्म, ज्ञान तथा वैराग्य विषयक सद्‌गुणों की बातें कही। फिर कहा, 'अब प्रागजी भक्त के हृदय में श्रीहरि के स्वरूप का यथार्थ निश्चय है या नहीं, इस विषय में भी आप ही कहिए।' इस प्रकार अत्यंत चतुराई से यज्ञपुरुषदासजी ने भगतजी की एकांतिक स्थिति के विषय में प्रश्न किया।

तब विठ्ठलभाई कहने लगे, 'निश्चय के विषय में तो प्रागजी भक्त अविचल रहते हैं, क्योंकि उनको सत्संग से बहिष्कृत करने पर भी वे अविरत श्रीहरि के भजन में तल्लीन रहते थे तथा मंदिर के द्वार के आगे बैठकर त्यागी-गृहस्थों का दर्शन करते हैं। अत्यंत विनम्र भाव से उन्होंने सभी को प्रसन्न किया। उनके उपदेश से ही अनेक मुमुक्षुओं को श्रीहरि का निश्चय हो गया है, तो उनकी सर्वोपरि निष्ठा में क्या संशय हो सकता है। वे केवल श्रीहरि को सर्वकर्ता समझते हैं और अन्य कैसे भी चमरबंदी देवी-देवताओं का उनको कोई डर नहीं था।'

अब यज्ञपुरुषदासजी कहने लगे कि 'जिस प्रकार धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति के चारों गुण भगतजी में निरंतर विद्यमान दिख रहे हैं। अत: वचनामृत के अनुसार उनके स्वरूप में श्रीहरि अखंड निवास करके रहे हैं। यही कारण हैं कि हम उनके पीछे-पीछे दीवाने बनकर घूम रहे हैं।'

इस घटना के बाद कुछ संत भगतजी की आज्ञा से गुजरात पधारे।

वरताल में उत्सव के समय पर भगतजी के प्रमुख शिष्य संतों के लिए द्वेषी संतों द्वारा यह निश्चय किया गया कि भगतजी के बाहर निकाले गए संतों को सत्संग में पुनः स्वीकार कर लें, किन्तु उनके भगवे वस्त्र उतार लिए जाएँगे। परन्तु भगतजी के प्रेमी हरिभक्त इस बात पर सहमत नहीं हुए। अतः संतों को भी सत्संग से बाहर निकलना पड़ा।

21. सत्संग सुख

गुजरात से संतों के साथ हरिभक्तों का एक बड़ा संघ महुवा आ पहुँचा। भगतजी की आज्ञा से सभी को महुवा से कुछ दूरी पर आए कतपर गाँव में एक मकान में ठहराया गया। भगतजी भी यहीं पर संतों के साथ रहने लगे। संतों को अखण्ड दर्शन तथा सत्संग का सुख दिया। प्रतिदिन हरिभक्त विभिन्न सामग्री तैयार करके भगतजी को खिलाते तथा भगतजी भी सभी को परोसकर प्रसाद देते। इस गाँव में उन्होंने अविरत कथावार्ता-भजन तथा ध्यान करवाकर सभी को ब्रह्मानन्द का सुख दिया।

यज्ञपुरुषदासजी ने संस्कृत में भगतजी की महिमा विषयक एक अष्टक रचना की थी। उसे सुनकर सभी धन्य हो गए।

भगतजी के प्रति संतों की दृढ़ भक्ति देखकर हरिभक्त भगतजी की अपार महिमा समझने लगे। बहिष्कृत किया जाना इन संतों के लिए आशीर्वादरूप साबित हुआ। क्योंकि यही निर्मित था भगतजी का सत्संग इन संतों को प्राप्त हुआ।

एकबार सरल स्वभाव से भगतजी कहने लगे, 'ये यज्ञपुरुषदासजी इस मण्डल के महन्त होंगे।' परन्तु साथ ही उन्होंने यज्ञपुरुषदासजी से भी कहा कि आप सभी विज्ञानदासजी की आज्ञा में रहना।

एकबार कसौटी लेने के लिए भगतजी कहने लगे, 'ये भगवे वस्त्र ही तुम्हारे लिए बन्धनकारी हैं, अतः आप सब घर जाओ और सत्संग करो।' परन्तु संतों ने कहा, 'हम सभी ने ब्रह्मचर्य की कठोर साधना करते हुए भगवान को प्राप्त करने का निर्णय लिया। अतः हम घर तो नहीं जाएँगे।' संतों की ऐसी दृढ़ता देखकर भगतजी बहुत प्रसन्न हुए।

उन्होंने सभी को आशीर्वाद दिया और भाद्रोड गाँव जाने की आज्ञा दी। यहाँ सभी भद्रेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहरे।

चूँकि यहाँ भगतजी के दर्शन नहीं हुए। अत: संतों ने उपवास करना आरम्भ कर दिया। तीन निर्जल उपवास के बाद चौथे दिन भगतजी वहाँ आ पहुँचे, सभी को दिव्य शान्ति का अनुभव हुआ। भगतजी ने सभी को भोजन करवाया और सत्संग का दुर्लभ आनन्द देकर सभी को कृतार्थ किया।

गाँव में वे सभी संतों के प्रात:काल जगाकर नदी पर स्नान के लिए भेजते, संतों के वापस लौटने पर उन्हें ध्यान में बिठाते, तथा श्रीहरि के स्वरूप में अखंड वृत्ति लगाने की योग-प्रक्रिया बड़ी सावधानी से सिखाते। एक दिन उन्होंने सभी को एक उपवास और दूसरे दिन भोजन का व्रत प्रारंभ करवाया। उपवास के दिन वे निकट के गाँवों में संतों को भिक्षा के लिए भेजते। ईंधन के लिए गोबर इकट्ठा करने के लिए भी भेजते। पारणा के दिन बड़े प्यार से भोजन परोसते। निरन्तर कथावार्ता करके संतों के देहभाव को दूर कर देते। इसी शरीर में रखकर उन्होंने अक्षरधाम के आनंद की अनुभूति करवाई। अनेकबार संतों द्वारा वे श्रीहरि की मूर्ति के भक्तिपद तथा अष्टक बुलाते। वचनामृत का पठन करवाते तथा कथावार्ता करने का भी आदेश देते।

सभी संत भगतजी की सेवा में लग जाते। भगतजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था और वे जूते भी नहीं पहनते थे। इसी कारण उनके पैरों में जख्म पड़ जाते। वहाँ खपरैल के टुकड़ों से घिसकर उनके पैर स्वच्छ करते तथा जख्म देखकर वहाँ मक्खन लगाते। इन संतों के साथ बैठकर भगतजी मध्यरात्रि तक कथावार्ता करके मार्गदर्शन देते रहते। आज्ञा तथा उपासना की बातें कहकर वे कहते कि आप श्रीहरि की सर्वोपरि उपासना एवं निष्काम व्रत (ब्रह्मचर्य) दृढ़ करके रखेंगे, तो मैं आप सभी को अक्षरधाम में ले जाऊँगा।

एक दिन भगतजी ने संतों से बाजरे की रोटी, बैगन की सब्जी, छाछ आदि सामग्री तैयार करवाई। फिर कहा आज तो आप सभी को इतना खिलाऊँगा कि जो मेरी आज्ञा के अनुसार खाएँगे, मैं वही करूँगा जो वे आप कहेंगे।

इसके बाद उन्होंने संतों को अत्यंत प्रेमपूर्वक भोजन खिलाया। दूर बैठकर वे आज्ञा करके सभी को खिला रहे थे। कृशकाय यज्ञपुरुषदासजी ने

बर्बस तीन रोट खाए। किन्तु भगतजी ने कहा, आप अब भी आधी रोटी खाओगे, तो मैं आज तुम्हारे वश रहूँगा। परंतु वे किसी तरह खाने के लिए सक्षम नहीं थे। हाँलाकि गुरु की प्रसंशा के लिए उन्होंने खा लिया।

भोजन के बाद सभी ने चंदन की अर्चा करके भगतजी का पूजन किया। सारे शरीर पर चंदन की अर्चा की। भगतजी मूर्ति बड़ी देदीप्यमान लग रही थी। दर्शन का अलौकिक सुख पाकर सभी संत भगतजी से गले मिले। इस प्रकार गुरुमूर्ति का अपार सुख संपन्न हुआ।

गाँव में भगतजी की ज्ञान वार्ता से अनेक नए सत्संगी बने। कभी-कभी तो वे सारी रात जागकर संतों को ज्ञान तथा प्रेरणा देते रहते। साधुतायुक्त ऐसे संतों को अनेक कष्ट उठाने पड़ रहे हैं, यह देखकर भगतजी अत्यंत दु:खी होते तथा महाराज एवं स्वामी के चरणों में संतों के आनंद-मंगल के लिए प्रार्थना भी करते रहते।

श्रीहरि ने उनकी प्रार्थना सुन ली और एक दिन वरताल से विहारीलालजी महाराज का आदेशपत्र आ गया कि संतों को वरताल भेजने की कृपा करें।

सभी संतों के मन में भगतजी से अलग होने की पीड़ा हो रही थी। अंतिम दिनों में संतों ने भगतजी की अपार सेवा की। यज्ञपुरुषदासजी ने पुरण पोरी तथा सूरती खीर की रसोई तैयार की। भगतजी को भाव से भोजन परोसे। ऐसी नूतन सामग्री तथा स्वादिष्ट रसोई से भगतजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने संतों को बार-बार आशीर्वाद दिया, उनको निर्दोष बनाया और उन्हीं की आज्ञा से सभी ने वरताल की ओर प्रस्थान किया।

22. संत-मंडल सत्संग में वापस लिया गया

वरताल में मुख्य द्वार के सामने संतों का निवास एक हवेली में था। यहाँ विहारीलालजी महाराज के साथ उनकी मुलाकात हुई। उनके आदेश से संतों ने पुन: भगवे वस्त्र धारण कर लिए। अब विज्ञानदासजी को खानदेश (महाराष्ट्र) की ओर जाने का आदेश हुआ तथा यज्ञपुरुषदासजी एवं दूसरे संत गुजरात के गाँवों में विचरण के लिए निकल गए।

खानदेश में विज्ञानदासजी को सत्संग-प्रचार में अद्भुत सफलता प्राप्त

हुई। यहाँ कुछ हरिभक्तों के घर समाधि में श्रीहरि तथा भगतजी का दर्शन होने लगा। एक महिला को भूत लग गया था। उसने जैसे ही भगतजी महाराज की मूर्ति का दर्शन किया, वह ऐसी विरूप आत्मा से मुक्त होकर स्वस्थ हो गई। अब उसके शरीर में भगतजी का प्रवेश हो गया। वह बिलकुल भगतजी की तरह चेष्टाएँ करने लगी। इस महिला के माध्यम से भगतजी ने खानदेश में अनेक चमत्कार दिखाए। इस तरह वहाँ भी भगतजी की महिमा फैलने लगी। खानदेश के अनेक हरिभक्त महुवा आकर भगतजी का सत्संग करने लगे।

इसी दौरान विहारीलालजी महाराज महुवा पधारे। अत्यंत आदरभाव के साथ वे भगतजी से मिले। वे प्रतिदिन उनकी बातें सुनने के लिए बैठते। अपने थाल से प्रसादी भिजवाते तथा अन्य लोगों से भी भगतजी की महिमा भरी सभा में बुलवाते। जो भी उनके पास आते उनको भगतजी की महिमा कहे बिना उनको चैन नहीं पड़ता था। महाराजश्री ने भगतजी के घर पधरामणी करके सभी के मन का समाधान कर दिया।

संवत् 1949 (सन् 1893) में गढ़पुर स्थित लक्ष्मीवाड़ी में मूर्ति-प्रतिष्ठा का उत्सव सम्पन्न हुआ। विहारीलालजी महाराज ने भगतजी को निमंत्रित किया था तथा भगतजी ने भी गुजरात के हरिभक्तों को गढ़पुर के उत्सव में सम्मिलित होने का निमंत्रण दे दिया था। यज्ञपुरुषदासजी भी अपने विद्यागुरु रंगाचार्य के साथ वड़ोदरा से पधारे थे। यहाँ लक्ष्मीवाड़ी में तथा उनके निवास स्थान पर भगतजी के साथ बार-बार भेंट हो जाती थी। रंगाचार्य प्रागजी भक्त के दर्शन से बहुत प्रभावित हुए। स्वयं विहारीलालजी महाराज भी सभा में भगतजी से कथावार्ता करवाते।

यहाँ से हरिभक्तों के निमंत्रण पर भगतजी नडियाद पधारे। यहाँ झवेरीलालभाई के घर उनका निवास था। गुजरात के कोने-कोने से हरिभक्त भगतजी के सत्संग के लिए उमड़ पड़े थे। उन्होंने कुछ भेंट प्रागजी भक्त के चरणों में समर्पित की। उन्होंने हरिभक्तों को श्रीहरि के सर्वोपरि स्वरूप, स्वामी के अक्षर स्वरूप, सत्पुरूष ने जुड़ने तथा ब्रह्मचर्य का पालन करने की बातें बार-बार कहा करते। भगतजी सुबह मन्दिर पधारकर वहाँ कथावार्ता करते, रात्रि को नियम-चेष्टा (रात्रि की प्रार्थना) करते तथा अपने विश्राम करने के स्थान पर आकर देर रात तक वे ब्रह्मज्ञान की बातें करते रहते। कुछ

हरिभक्तों का भगतजी के साथ सम्बन्ध जुड़ जाने पर भगतजी ने उनको श्रीहरि का साक्षात्कार करवाया था।

23. वांसदा के दीवान के साथ सत्संग

स्वामी यज्ञपुरुषदासजी के प्रसंग से वांसदा के दीवान झवेरभाई नाथभाई अमीन (वीरसद) को भगतजी के दर्शन की उत्सुकता जाग उठी। उन्होंने विहारीलालजी महाराज तथा कोठारी गोवर्धनभाई के नाम वरताल तीन पत्र लिखे। जिसमे उन्होंने भगतजी के दर्शन की हार्दिक अभिलाषा व्यक्त की थी। दोनों की सहमति प्राप्त होने पर भगतजी कुछ हरिभक्तों के साथ बिलीमोरा होकर वांसदा पधारे। भगतजी के सत्संग का लाभ मिले, इसी उदेश्य से विज्ञानदासजी को भी यहाँ बुलाया गया था। दीवान ने अपने पद-प्रतिष्ठा के अनुसार भगतजी का भव्य एवं हार्दिक स्वागत किया। वे अपनी पत्नी के साथ हमेशा भगतजी की सेवा में लगे रहते।

क्योंकि वे वेदान्ती थे, इसलिए भगतजी ने विस्तार पूर्वक उनको श्रीहरि कथित अनादि पाँच तत्त्व के विषय में अत्यन्त सूक्ष्म बातें कहीं तथा जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म एवं परब्रह्म पाँचों तत्त्वों को वचनामृत एवं अन्य शास्त्रों के प्रमाण देकर सुंदर उपदेश किया, आज्ञा तथा उपासना के रहस्य को भी समझाया।

एकबार रात्रि के समय भगतजी नियम-चेष्टा (रात की प्रार्थना) के बाद विश्राम ले रहे थे कि अचानक वे अपने बिस्तर से उठ बैठे और भजन गाने लगे। दीवान साहब तथा अन्य हरिभक्त भी भगतजी के निकट आकर बैठ गए। कुछ समय के बाद भगतजी अपनी भाव-समाधि से जाग्रत होकर चारों ओर उपस्थित हरिभक्तों को उपदेश देने लगे कि, 'जो भगवान का साक्षात्कार करना चाहता है, उसे उठ-उठकर भजन करना चाहिए। मुमुक्षु हमेशा तो हिरण की तरह सावधान रहता हैं। तथा काकनिद्रा रखकर हमेशा सचेत रहता है। हमारे सिर पर यदि इन्द्रियों एवं अंत:करणरूपी शत्रु मंडरा रहे हैं, तो नींद कैसे आएगी। अत: हमें तो खाते-पीते, सोते-जागते हमेशा भगवान के भजन-स्मरण का आग्रह रखना चाहिए। ऐसा करने पर हम जो भी संकल्प करें, उसे सिद्ध कर सकते हैं।

ब्रह्म–परब्रह्म के तत्त्वज्ञान की बातों के साथ भगतजी सरस शब्दों में अध्यात्म की समझ भी देते थे कि 'यदि आपको ब्रह्मरूप होकर भगवत्सेवा में रहना हो, तो आपको सदाचाररूपी धर्म को सुदृढ़ करके रखना। ऐसी धर्मनिष्ठा से ज्ञान टिक सकता है। ज्ञान से विवेक और वैराग्य प्रकट होते हैं। ज्ञानांश से उत्पन्न हुए वैराग्य से हमारी विषयासक्ति मिट जाती है और हमें भगवान के प्रति आत्मारूप होकर प्रीति होती है। इस शरीर से हम केवल ग्यारह नियमों का पालन करें, तथा मन, कर्म, वचन से भी सदाचार का पालन करें। धर्म रखने से ही जीवन में भक्ति उदय होती है। क्योंकि वह पतिव्रता है। साथ ही उन दोनों के पुत्र ज्ञान तथा वैराग्य भी हमारे जीवन में आत्मसात् होते हैं।' ऐसी अद्भुत बातें कहकर भगतजी ने दीवानजी को भजनानन्दी बनने का पाठ सिखाया। उन्होंने दीवानजी को वचन दिया कि, 'आप के मृत्यु के समय मैं स्वंय श्रीहरि को लेकर आपको अक्षरधाम में ले जानेके लिए आऊँगा।'

यहाँ वांसदा के महाराजा, उनके प्रमुख अधिकारी तथा कुछ प्रतिष्ठित लोग भी भगतजी के दर्शन के लिए आते रहते और भगतजी की आध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित होते। महाराजा ने अपने महल में उनकी पधरावनी का आयोजन भी किया।

इस प्रकार दीवानजी को सत्संग से अभिषिक्त करके भगतजी चाणसद होकर वरताल आ पहुँचे। वांसदा में भगतजी के आध्यात्मिक प्रभाव की जानकारी पाकर विहारीलालजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए। पगड़ी बाँधकर उन्होंने भगतजी का सम्मान किया। उनसे विदा लेकर भगतजी नडियाद होकर अहमदाबाद पधारे।

24. अहमदाबाद में ज्ञान यज्ञ

भगतजी के आगमन से पुरुषोत्तमप्रसादजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भगतजी और उनके साथ पधारे हरिभक्तों के निवास का प्रबंन्ध अपनी हवेली में ही किया। भगतजी के उपस्थित से मन्दिर का पूरा वातावरण ही बदल गया। मंगला आरती के तुरन्त पश्चात् भक्तों की सत्संग सभा में भगतजी ज्ञान बातें प्रारंभ करते। शृंगार आरती के समय कीर्तनगान होता तथा राजभोग आरती तक ज्ञान वार्ता से सभी को लाभान्वित करते। भोजन के बाद दोपहर

की कथा में वचनामृत का निरुपण करके सभी की चित्तवृतियों को अपने दिव्यस्वरूप में आकृष्ट कर लेते और प्रत्येक हरिभक्त को दस माला फेरने का आदेश देते। संध्या के समय कुछ अल्पाहार के बाद वे मध्य रात्रि तक संप्रदाय के इतिहास तथा अक्षरपुरुषोत्तम के ज्ञान की बातें सुनाते रहते। सारे गुजरात से उनके स्न्ही हरिभक्त अहमदाबाद में प्रागजीभक्त का लाभ लेने के लिए उमड़ रहे थे। भगतजी उनके पास ठाकुरजी की थाल एवं रसोई की सेवा करवाते तथा संतों को भी प्रसन्न करते।

यज्ञपुरुषदासजी उस समय महेमदाबाद के गाँवों में विचरण कर रहे थे। उनका संस्कृत अध्ययन बंद करवाया गया था। परंतु इस प्रदेश में उन्होंने सैकड़ों मुमुक्षुओं को भगतजी की महिमा समझाकर उनको अहमदाबाद जाने के लिए प्रेरित करते। ताकि वे भगतजी के प्रत्यक्ष दर्शन का लाभ ले सकें।

एकबार भगतजी ने ब्रह्मचर्य की महिमा कही, 'ब्रह्मचर्य से ही भगवान बस में हो जाते हैं। जो ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता हैं, उसके ललाट से तेज की फुहारें छूटती हैं और वह स्नान करता है, तब उसकी शिखा से टपकते हुए जलबुँन्दों को हवा में ही झिलने के लिए साक्षात् देवता उपस्थित हो जाते हैं। जब से श्रीहरि प्रकट हुए, तब से उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत का ही आग्रहपूर्वक पालन करवाया है। इसलिए जो एकान्तिक धर्म सिद्ध करना चाहते हैं, उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत का पालन दृढ़ता पूर्वक करना, इन्द्रियों को नियंत्रण में रखना, एक बार भोजन करना, निरन्तर भगवान का स्मरण करना, एकाग्र होकर ध्यान करना तथा काम आदि वासनाओं का संकल्प न करना। इसीको 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं। जो त्यागी होकर इस व्रत का पालन नहीं करता, तो उसे धिक्कार है।'

यज्ञपुरुषदासजी प्रतिदिन नियमित रूप से महेमदाबाद स्टेशन पर जाते थे और अहमदाबाद से भगतजी के दर्शन कर लौटनेवाले भक्तों से भगतजी के बारे में पूछताछ करते। उनके मन में भी भगतजी के दर्शन के लिए उत्कट भाव जाग रहे थे। आखिर एक साधु को साथ लेकर वे अहमदाबाद आ पहुँचे। भगतजी उनको देखते ही डांटने लगे, परन्तु संतों और हरिभक्तों ने उनकी बार-बार स्तुति की, तब भगतजी ने उनको बुलाकर प्रेम पूर्वक आशीर्वाद दिया।

जब भी भगतजी और उनके साथ पधारे हरिभक्त ठाकुरजी के लिए रसोई की सेवा देते तब पुरुषोत्तम प्रसादजी महाराज स्वयं सभी को परोसने के लिए निकलते। इस प्रकार वे भगतजी के प्रति अपना विशेष स्नेह व्यक्त करते। इस मंदिर के सभी संत-हरिभक्त भी भगतजी के आगमन से प्रसन्न थे। क्योंकि उनके सांनिध्य से सभी को ब्रह्मानंद की अनुभूति होती रहती थी। शहर के अनेक महानुभाव भगतजी के प्रति आकृष्ट होकर उनके दर्शन-सत्संग के लिए आते रहते थे।

एकबार भगतजी ने सभी संतों को एकाग्रचित्त होकर स्वामिनारायण महामंत्र की माला फेरने का आदेश दिया। फिर कहा, 'जिस प्रकार व्यापारी गुड़, गेहूँ, घी आदि की कीमत पर ध्यान रखता हैं, उसी प्रकार हमें भी निरंतर भगवान की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। क्योंकि व्यापारी सामग्री से कमाई करता हैं और हमें भगवान के मूर्ति से कमाई करनी हैं। निरंतर भगवत्स्मरण रखने से हम महाराज की मूर्तिरूप अविनाशी सुख प्राप्त कर सकते हैं। अत: निरंतर भगवान का स्मरण करते रहें। पलभर के लिए उनको भूलें नहीं। त्यागी होकर यदि भगवान को भूल गए, तो फिर आपने त्याग ही क्या किया?' इस तरह वे भगवान के साथ ऐक्य बनाने के लिए संतों को भी अद्‌भुत प्रेरणा दे रहे थे।

एकबार भगतजी की आज्ञा लेकर यज्ञपुरुषदासजी ने हरिभक्तों की सभा में गुणातीत सत्पुरुष की अद्‌भुत महिमा कही। उनके मार्मिक निरूपण से भगतजी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उठकर यज्ञपुरुषदासजी के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। यह देखकर एक हरिभक्त को विचित्र-सा लगा। उन्होंने पूछा, 'आपने गृहस्थ होकर इस तरह त्यागी के सिर पर आशीर्वाद क्यों दिया?'

भगतजी ने सहजतापूर्वक कहा, 'मैंने कहाँ आशीर्वाद दिया है? यह तो साक्षात् भगवान स्वामिनारायण ने हाथ रखा है, मैंने नहीं।' यह सुनकर सभी को भगतजी के परभाव का दर्शन हो गया तथा भगतजी की अध्यात्म भूमिका की ऊँचाई समझने लगे।

मन्दिर में हिण्डोला उत्सव मनाया जा रहा था। एक बार बातें करते हुए भगतजी ने कहा, 'श्री नरनारायण को भरतखण्ड के महाराजा कहना चाहिए। जब श्रीहरि भरतखण्ड में पधारे, तब वे, उन्हें पथ-दर्शक (गाइड)

के रूप में धरती पर लाए थे। उन्होंने, श्रीहरि की अनन्य सेवा की थी, इसलिए यहाँ मन्दिर बनवाकर श्रीहरि ने उनकी प्रथम मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की। परंतु उन्हें इष्टदेव के समान मुख्य रूप से नहीं समझना चाहिए। श्रीहरि ने इस मंदिर की प्रदक्षिणा मे रूपचौकी पर बिराजमान होकर आनन्द स्वामी का हाथ थामकर कहा था, 'ऐसे अनन्त नरनारायण, लक्ष्मीनारायण एक पैर पर खड़े होकर मेरा स्मरण करते हैं।' इस प्रकार श्रीहरि को सर्वोपरि समझकर हमें उनकी उपासना करनी चाहिए। मैं तो केवल दर्जी हूँ। दो टाँके तोड़ता हूँ, तो दो टाँके लगाता हूँ। अर्थात् जीव से धन और कामवासना को मिटाता हूँ और भगवान एवं संत के साथ जोड़ता हूँ।'

कुछ दिनों के बाद उन्होंने यज्ञपुरुषदासजी को महेमदाबाद जाने की अनुमति दी तथा संस्कृत का अध्ययन करने का भी आदेश दिया। फिर कहा, 'तुम्हारी इतनी छोटी और कृशकाय काया मण्डल के मुख्य संत होने के लिए योग्य नहीं है। मुख्य संत तो प्रभावशाली लगने चाहिए।' इस प्रकार यज्ञपुरुषदासजी के साथ वे मनोविनोद करने लगे।

यज्ञपुरुषदासजी ने भगतजी के पास हरिकृष्ण महाराज की एक प्रतिमा प्रसादी करने के लिए रखी। वह देखकर भगतजी अति प्रसन्न हुए और प्रत्यक्षरूप से उनको देख रहे हों, इस भाव से कहने लगे, 'बहुत सुंदर मूर्ति है; परंतु इस मूर्ति की नासिका थोड़ी लम्बी है। श्रीहरि की नासिका इतनी लम्बी नहीं थी।'

उन्होंने करीब एक घण्टे तक उस मूर्ति को अपने हृदय से लगाकर रखा, फिर उसे यज्ञपुरुषदासजी को लौटा दिया।

मन्दिर में उस समय हाथ स्वच्छ करने के लिए मिट्‌टी का उपयोग किया जाता था। एक बार भगतजी ने देखा कि कुछ पार्षद मिट्टी की गाड़ियाँ खाली कर रहे थे। भगतजी भी यह देखकर तुरंत गाड़ियाँ खाली करने के लिए आ पहुँचे! जिन हरिभक्तों ने यह देखा, वे भी भगतजी का अनुसरण करने लगे। अपना काम तुरन्त निपट गया, यह देखकर सभी पार्षद आनंदित हो गए। इतने महान पद पर रहकर भी भगतजी कैसे अहंशून्य थे! वे साधारण सी सेवा में भी स्वयं को जोड़ देते। संतों और भक्तों ने यह सोचकर अपना मस्तक झुका दिया।

25. भगतजी का मनमोहक व्यक्तित्व

बड़ोदा के रहनेवाले रावसाहब की धर्मपत्नी सीताबाई को लगातार पाँच दिनों तक समाधि का आनंद प्राप्त हुआ। समाधि में उन्होंने श्रीहरि के साथ भगतजी का भी दर्शन किया। अत: उनको भगतजी के प्रत्यक्ष दर्शन की उत्कट इच्छा होने लगी। रावसाहब ने भगतजी को वडोदरा आने के लिए निमंत्रित किया। उनके प्रत्यक्ष दर्शन तथा सेवा से दोनों बहुत प्रसन्न हुए। मन्दिर में उनकी मुलाकात वहाँ के विद्वान प्राध्यापक रंगाचार्यजी से भी हुई। परमात्मा के कल्याणकारी गुणों के धारक सत्पुरुष में ऐक्य साधने की प्रेरणा देते हुए भगतजी ने कहा, शास्त्र पढ़कर भी यदि भगवान के कल्याणकारी गुणों का मनन न किया हो, तो ऐसी विद्वता का मूल्य ही क्या?' रंगाचार्यजी को यज्ञपुरुषदासजी द्वारा भगतजी के ब्रह्ममय होने का पर्याप्त परिचय था।

अपने सम्पर्क में आनेवाले गृहस्थों को भी भगतजी ब्रह्मचर्य पालन की प्रेरणा देते थे। इस प्रकार वे सभी को निर्वासनिक एवं विकार रहित बनाते तथा भजन करने की उत्तम रीति सिखाते कि, 'आप सभी को बिना पलक झपकाए, त्राटक करते हुए खुले नेत्रों से भगवन् नाम का स्मरण करना चाहिए।'

इतना कहकर वे स्वयं अपलक नेत्रों से भगवान की मूर्ति को निहारने लगते तथा एड़ी से चोटी तक श्रीहरि के अंग तथा आभूषणों का का विस्तृत वर्णन करने लगते। उनकी ऐसी साधना से लोग अत्यन्त प्रभावित होते।

कुछ दिनों के बाद उन्होंने महुवा की ओर प्रस्थान किया। गुजरात के कुछ हरिभक्त उनके साथ वढवाण शहर तक पधारे। यहाँ अपने घर में बिराजमान होकर भगतजी ने हरिभक्तों के कल्याण के लिए अट्ठारह हज़ार जपमाला घुमाई। निरंतर ध्यान-भजन किया और हरिभक्तों से कहा, 'आप सब काम करते हुए भगवान के नाम-स्मरण की आदत डालो। श्रीहरि ने भी सोमलाखाचर से कहा था कि आप हमारी इस मूर्ति को अपने हृदय में अंकित कर लेना तथा हमारी स्मृति करते रहना, नहीं तो बाद में आँसू गिराने पड़ेगें।'

सारे गुजरात से अनेक हरिभक्त भगतजी के सत्संग के लिए महुवा आते रहते। इस अवधि में अचानक भगतजी को एक दु:खद खबर मिला कि उनके कृपापात्र एकान्तिक शिष्य स्वामी विज्ञानदासजी का अक्षरवास हुआ

है! वे द्वेषियों के विरोध का शिकार बने थे। छपैया चले गए थे। अतः विहारीलालजी के आदेश से उनको छपैया के मंदिर में रहना पड़ा था। अहमदाबाद में भगतजी से मिलकर वे छपैया पहुँचे। यहाँ वे अत्यन्त बीमार हुए और उनकी आत्मा भगवान को प्यारी हो गई। खबर सुनकर भगतजी तथा उनके सुहृद भक्त समुदाय सभी दुःखी हुए।

गुजरात में भगतजी की महिमा तेजी से फैल रही थी। भरूच के धनाढ्य सेठ गणपतभाई, जो वचनामृत के मर्मज्ञ थे, उन्होंने भी पीज के जेठाभाई के साथ भगतजी के दर्शन करने का मौका ढूँढ़ निकाला। अपने पिता से पूछे बिना वे भरुच से वलसाड जाकर नौका द्वारा महुवा के लिए निकल पड़े। परंतु समुद्री तूफान में फँस गई नाव से बचने की किसी को उम्मीद नहीं थी। दोनों ने बार-बार भगतजी से प्रार्थना की। आखिर सभी की रक्षा हुई और वे सुरक्षितरूप से महुवा पहुँचे। भगतजी ने रहस्य बतलाते हुए कहा कि महाराज ने बहुत कृपा करके आपकी रक्षा की।

गुरु के दर्शन-सत्संग से गणपतभाई अतिप्रसन्न हुए। उनके मन में सत्पुरुष ही मोक्ष का द्वार हैं, यह प्रतीति दृढ़रूप से हो गई। भगतजी ने भी वचनामृत के रहस्यों को समझाया। दोनों को शुद्ध मुमुक्षु जानकर भगतजी ने खूब आशीर्वाद दिया और सत्संग करते रहने की आज्ञा दी।

वे समुद्र के पूर्व अनुभव के कारण रेलमार्ग से लौटना चाहते थे, परन्तु भगतजी के कहने से वे नाव से लौटे। इस बार उनको कोई कष्ट नहीं हुआ और उसी दिन दोनों अपने घर पहुँच गए।

इस प्रकार अनेक कष्ट उठाते हुए हरिभक्त भगतजी के सत्संग के लिए महुवा आते थे। एक बार हरिभक्तों का एक संघ खेड़ा जिले से महुवा आ पहुँचा। सभी लोग मंदिर की ओर जाते हुए उच्च स्वर से भजन गा रहे थे। यह सुनकर, एक उद्धवजी लोहाना किसी के भड़काने के कारण इस संघ को गालियाँ देने लगा और ऐसे ही एक द्वेषी ब्राह्मण दुर्गाशंकर ने तो भरी बाजार में भगतजी के चेहरे पर चाँटा जड़ दिया। सारे संघ में सन्नाटा छा गया। कुछ हरिभक्त बदला लेने के लिए उत्सुक हो उठे। परंतु भगतजी ने सभी को शान्त किया तथा उन दोनों द्वेषियों को क्षमा कर दिया। फिर भी संघ के कुछ हरिभक्तों ने उसे धक्के मारकर पीछे तो धकेल ही दिया।

यह देखकर भगतजी ने अपने घर आकर सभा में उन हरिभक्तों को डांटा और कहा, 'हमें चाहे जितने कष्ट पड़े, हमेशा सहन करते रहना चाहिए।'

परंतु हरिभक्तों ने भक्त का पक्ष लेने के लिए वचनामृत से कुछ बातें निकाली, यह सुनकर भगतजी मुस्कुराने लगे। इस घटना के बाद सारे शहर के हरिभक्तों में कुछ आपसी कटुता फैल गई थी, परन्तु भगतजी के आदेश के कारण बात आगे नहीं बढ़ी। गुजरात के हरिभक्त अपार ब्रह्मानंद पाकर बिदा हुए। परंतु उपरोक्त घटना के बाद वरताल स्थित द्वेषी साधुओं ने उत्सव के दिन सभी को बता दिया कि अब से कोई हरिभक्त महुवा नहीं जाएँगे। परंतु भगतजी के शूरवीर शिष्य ने इस आदेश की कोई परवाह नहीं की। वे तो भगतजी के दर्शन के लिए महुवा जाते ही रहे।

भगतजी उनको दर्शन-सत्संग का संम्पूर्ण लाभ देते। प्रत्येक भक्त को उसकी पात्रता के अनुसार भगतजी दिव्य आनन्द का लाभ देते। वे कहते, 'श्रीहरि जिस प्रकार अक्षरधाम में बिराजमान हैं, वैसे ही मनुष्य रूप में भी इस धरती पर बिराजमान हैं। उन दोनों के स्वरूप में तिलमात्र भी अन्तर नहीं है। यदि आप यह समझ लो, तो तुम्हारे सभी काम सिद्ध हो जाएँगे। आपको भी जड़भरत के समान उच्च वैराग्य सिद्ध हो जाएगा। बिना वैराग्य के भगवान का आनन्द कभी नहीं मिल सकता। नरक के समान विषय-सुख में सड़ते रहे, इससे तो उत्तम यह है कि देह को छोड़कर हम भगवान के धाम में चले जाएँ।' भगवान और भगवान के संत से प्रीति बढाने के लिए भगतजी ने सभी को बहुत प्रेरणा दी।

26. गढ़डा में जलझुलनी महोत्सव

स्वामी यज्ञपुरुषदासजी ने विहारीलालजी महाराज से मिलकर ऐसा आयोजन किया था कि भगतजी भी संवत् 1952 (सन् 1896) में होने वाले जलझुलनी महोत्सव में भाग लेने के लिए गढ़पुर पधारें। यह बात जब निश्चत हो गई, तो उन्होंने गुजरात के अनेक गाँवों में हरिभक्तों को सूचित कर दिया था कि भगतजी इस उत्सव में पधारेंगे, आप भी उपस्थित रहना।

उत्सव का आयोजन लक्ष्मीवाड़ी में किया गया था। भगतजी तथा

स्नेही भक्तों का संघ विहारीलालजी तथा अन्य प्रमुख संतों के साथ मंदिर में ही ठहरा था। सभी सदगुरुओं के आसन पर जाकर वे संतों को भी दर्शन लाभ दे रहे थे। कोठारी ने उनको सभा में सदाचाररूपी धर्म विषयक उपदेश देने पर प्रतिबंध लगा दिया था, इसलिए भगतजी ज्ञान वार्ता नहीं करते थे।

एकबार महाराजश्री ने भगतजी को अपने आसन पर बुलाया और पूछा, 'भगवान के आनन्द की अनुभूति कोई कैसे कर सकता है?' भगतजी ने कहा, 'जो भगवान के सुख में आसक्त हो जाता है, उसके नेत्रों से भगवान के सुख की वर्षा होती है। ऐसे भक्त की दसों इन्द्रियाँ और अन्त:करण एक भगवान में ही रम जाते हैं। जिसने परमात्मा के आनंद का अनुभव किया हो, वह भगवान की मूर्ति छोड़कर इधर-उधर नहीं भटकता। मुक्तानन्द स्वामी ने भी कहा था कि, 'जो गुरुमुखी हुआ, वही ऐसे दुर्लभ आनंद की अनुभूति कर सकता है।' इस प्रकार महाराजश्री भी भगतजी के सत्संग का लाभ लेते और कृतार्थता का अनुभव करते।

भगतजी अपने स्नेही संतों को स्पष्ट रूप से कहते थे, 'भगवान के परम एकांतिक संत में आत्मबुद्धि रखना, वही कल्याण का असाधारण साधन है। श्रीहरि ने मोक्ष की कुंजी ऐसे सत्पुरुष को ही दी है और संत को मोक्ष का द्वार कहा है। ऐसे संत की मन, वचन, कर्म से सेवा करके एकान्तिक धर्म सिद्ध कर लो, परन्तु उनका द्रोह कभी मत करो। एक बार नागा बाबाओं ने श्रीहरि को तलवार दिखाकर ताजी भाजी तोड़ने के लिए आग्रह किया था। परंतु श्रीहरि ने भाजी नहीं तोड़ी और कहा, 'हमारा दयालु स्वभाव है किन्तु यदि कोई भगवान के भक्त को क्रूर दृष्टि से देखे, तो उसकी आँखें निकाल दूँ और यदि वह अपने हाथों से भगवान के भक्त को दु:ख दे, तो उसके हाथ काट लूँ। ऐसा क्रोध उस पर आता है।' इसलिए, यदि कोई भक्त को दु:ख देगा तो उसे परेशान होकर अपना बनना पड़ेगा, यह बात एक सिद्धांत के रूप में समझ लेनी चाहिए।'

तब संतों ने पूछा, 'महाराज, आप किस रीति से ध्यान करते हैं?'

भगतजी ने उत्तर दिया, 'मैं ध्यान करना नहीं जानता। बस एक गुणातीतानन्द स्वामी की कृपा से इस देह का भान भूल जाता हूँ तथा जिस प्रकार मैं इस समय आपको देखता हूँ, उसी प्रकार मैं श्रीहरि को भी देखता

हूँ। मैं केवल इतना जानता हूँ कि जब मुझे नहीं सुनना हैं, तो मैं अपने श्रवण वृत्ति को आत्मा की और खींच लेता हूँ, ताकि सहन ही संयम हो जाए। बस इससे अधिक मुझे कुछ नहीं आता। अतः जिसे भगवान का साक्षात्कार करना है, वह इन्द्रियों एवं अंतःकरण को पराजित करें और इसके लिए वे शूरवीर बनें।'

'सच्चा ज्ञान किसे कहते हैं? जिस प्रकार से तलवार और म्यान एक-दूसरे से अलग है, उसी प्रकार आत्मा और देह पृथक्-पृथक् है, ऐसा अनुभव होने लगे, तब उसे सच्चा ज्ञान कहते हैं। ऐसे ज्ञानी को अन्तःकरण में भगवान के सिवा दूसरा संकल्प तक नहीं उठता। वह तो प्रत्येक बुरे संकल्प को मिटा देता है।

फिर कहने लगे, 'देह, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण रूप डाकुओं ने पीछा किया है, तब शान्ति कैसे हो सकती है? काम-क्रोधादि दोषों के सामने दीन मत होना। उनके सामने तो शेर होना, शूरवीर होना। शूरवीर होकर श्रीहरि की प्रार्थना करें कि 'हे प्रभु! आप मेरे अन्तर में निवास कीजिए'

इस प्रकार ब्रह्मरूप होकर भगवान के प्रति स्नेह बढ़ाने की अद्भुत बातें कही।

इस उत्सव में हरिभक्तों ने कहा कि यज्ञपुरुषदासजी को आगे संस्कृत पढ़ाना चाहिए। तब भगतजी ने कहा, 'यदि राजकोट में पढ़ाई की व्यवस्था हो सके, तो पढ़ना चाहिए; परंतु संस्कृत शिक्षा के लिए उन्हें काशी जाने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यज्ञपुरुषदासजी तो हरिभक्तों के अन्तर को शुद्ध करने की संमार्जनी हैं। यदि आप उन्हें दूर भेज देंगे, तो यहाँ हरिभक्तों को कौन संभालेगा?'

एकबार भगतजी गढपुर के माना भक्त के साथ बैठे थे। उन्होंने कटाक्ष करते हुए भगतजी को शिक्षा देना आरंभ किया, 'देखो प्रागजी, दो दिन के जीवन में अपने साधारण कोटि के शिष्यों से न जुड़ना। नहीं तो उन्हें धाम में ले जाना पड़ेगा।'

भगतजी यह सुनकर कहने लगे, 'माना भगत, ऐसे महान हरिभक्तों को साधारण कोटि के किस प्रकार कह सकते हैं? मैं तो इन भक्तों को ब्रह्म की मूर्ति मानता हूँ। यदि उनको 'साधारण' कहेंगे, तो हमारी जीवात्मा का

ही नाश हो जाएगा। श्रीहरि की इच्छा होगी तो हम ऐसे भगवद् भक्तों के साथ जन्म-जन्मान्तर तक रहने को तैयार हैं।'

'चाहे जितनी आत्मनिष्ठा की बातें करते रहो, परंतु आत्मारूप नहीं हो सकते। इसके लिए तो स्वयं को ब्रह्म मानकर परमात्मा की महिमा पूर्वक भक्ति करनी चाहिए। जिस प्रकार दस-बारह वर्ष की कन्या क्षय रोग के कारण युवती होने के पहले ही मौत की नींद सो जाती है, उसी प्रकार बिना महिमा के भक्ति परिपक्व नही होती तथा अंततः नष्ट होती है। परंतु जिसके हृदय में महिमा सहित भक्ति सुदृढ़ तो अन्य कल्याणकारी गुण न होने पर भी उस भक्त के हृदय में आत्मसात् हो जाते हैं।'

कथा-सुख देकर महुवा पधारे।

27. जूनागढ़ में अपूर्व सन्मान

संवत् 1921 में भगतजी को बिना किसी बड़े अपराध के सत्संग से बहिष्कृत किया गया था। कारण केवल यही था कि वे अपने गुरु गुणातीतानंद स्वामी के अक्षरब्रह्म स्वरूप का प्रचार-प्रसार करते थे। बाद में उनको सत्संग में वापस तो लिया गया, परंतु 32 साल वैसे ही बीत गए कि उनको जूनागढ़ आने का अवसर ही उपस्थित नहीं हुआ। परंतु उनके शिष्य स्वामी यज्ञपुरुषदासजी ने राजकोट में संस्कृत अध्यनन करते हुए निश्चय कर लिया कि जिस मंदिर में मेरे गुरु भगतजी महाराज का अपमान हुआ था, वहीं उनका भव्य स्वागत होना चाहिए। उन्होंने इस अवसर को संपन्न करने के लिए अति सूक्ष्म आयोजन किया।

वड़ताल के अधिकृत व्यक्तियों के साथ-साथ उन्होंने विहारीलालजी महाराज के गले अपनी बात उतारी। उन से भगतजी पर आज्ञा पत्र लिखवाया कि आप संवत 1953 (सन् 1897) की जन्माष्टमी के उत्सव पर जूनागढ़ पधारें।

समय होने पर भगतजी जूनागढ़ पधारे। विहारीलालजी महाराज के साथ उनका भी जूनागढ़ के रेलवे स्टेशन से गाजे-बाजे के साथ सुशोभित भव्य सम्मान किया गया। जैसी बग्घी में विहारीलालजी महाराज बिराजमान थे, वैसी ही बग्घी में बैठाकर भगतजी की सम्मान यात्रा निकाली गई।

गाड़ियों को पुष्पों से सुशोभित किया गया था। मंदिर में पूरे संघ के निवास की आरामदायक व्यवस्था की गई थी। कोठारी जीभाई की सहायता से यज्ञपुरुषदासजी ने भगतजी का भव्य सत्कार संपन्न किया।

भगतजी के आगमन की खबर सारे शहर में वायु की भाँति फैल गई। शहर के बड़े-बड़े नागर हरिभक्त उनके दर्शन के लिए आने लगे। स्वामी के प्रिय संत बालमुकुन्ददासजी तथा जागा भगत के साथ उनका कई वर्षों के बाद इसी मंदिर में स्नेह मिलन हो गया। भगतजी ने अपने प्रिय हरिभक्तों को मन्दिर में ठाकुरजी तथा संतों के लिए रसोई की सेवा देने के लिए प्रेरित किया। सभी संत-हरिभक्त वह प्रसाद लेकर अतिप्रसन्न हुए।

उन दिनों भगतजी प्रतिदिन सभा-मण्डप में पधारते। महाराजश्री, बड़े सद्‌गुरु संतों तथा जागा स्वामी के समान महान मुक्तों के आसन पर पधारकर वे कथावार्ता प्रारंभ कर देते। इस मंदिर में रहनेवाले सभी पुराने संत-भक्त जानते थे कि भगतजी अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी के परम प्रिय शिष्य रह चुके हैं। उन्होंने स्वामी की प्रसन्नता प्राप्त कर ली थी, इसीलिए वे उनको दण्डवत् प्रणाम करके अपना आदर व्यक्त कर रहे थे।

यह देखकर स्थानीय हरिभक्त डॉक्टर उमियाशंकरजी ने अपने गुरु बालमुकुन्ददासजी से पूछा, 'प्रागजी जैसा एक मामूली-सा दर्जी पलंग पर बैठे और संतवृंद उसे दंडवत् प्रणाम करें! ऐसा क्यों?'

बालमुकुन्ददासजी ने हँसकर कहा, 'तुम प्रागजी भक्त को नहीं जानते। उन्होंने तो गुणातीतानन्द स्वामी की अपार सेवा करके, उनकी ऐसी कृपा प्राप्त कर ली है कि यदि हम उन्हें स्वर्ण के सिंहासन पर बिराजमान करके, स्वर्ण दीपक से उनकी आरती उतारें, तो भी कम है।'

इस अवसर पर गुणातीतानन्द स्वामी के प्रिय नागर हरिभक्त चकूभाई, सदाशंकरभाई आदि भगतजी को देखकर गद्‌गद हो गए। उन्होंने पुरानी स्मृतियों का खजाना खोल दिया और कहा, 'प्रागभा, तुमने तो स्वामी के चारों थनों से जैसे अमृत ही पी लिया था, तुमने तो दूसरों के लिए एक बूंद भी नहीं छोड़ा!'

भगतजी भी उन पुराने भक्तों से मिलकर अतिप्रसन्न हुए।

यहाँ वे सभी को बता रहे थे कि उन्होंने किस प्रकार स्वामी का

सत्संग किया, किस तरह उनकी आज्ञा का पालन किया तथा किस प्रकार उनकी सेवा की। ऐसी बातें करके, वे सभी को ब्रह्म के आनंद में सराबोर कर देते।

एकबार उन्होंने कहा, 'हमें सदा सावधान रहना चाहिए तथा रजस् - तमस् आदि जो भी गुण अपने हृदय में स्थित हों, उससे अवगत रहना चाहिए। ऐसा करने पर निश्चित रूप से सत्पुरुष की कृपा सिद्ध होगी। वे हमें अपने जैसे महान बना देंगे। हमें सत्पुरुष से संबंध तो हो गया, परन्तु उनके पास रहने वाला सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म के समान परिपूर्णता प्राप्त न हुई तो उनका संबंध होने का क्या लाभ? अतः हमें भजनानन्दी भक्त बनकर परमानन्दी की पहचान कर लेनी चाहिए। आनन्द तीन प्रकार के होते हैं :-

'विषयानन्दी जगत है, भजनानन्दी हरिदास।
परमानन्दी जीवनमुक्त है, ज्या की भई वासना नाश ॥'

परमानन्दी संत के साथ जीवात्मा आत्मबुद्धि कर लेगा तो ऐसा आनंद प्राप्त होने में कोई देर नहीं लगेगी।

सत्पुरुष के गुण ग्रहण करते रहना ही भक्ति का एक प्रकार है। भक्ति तो प्राणरूपा है। यदि देह में इन्द्रियाँ एवं अंतःकरण हों, किन्त प्राण नहीं होगा तो सभी व्यर्थ हैं। उसी प्रकार वैराग्य, ज्ञान एवं धर्म के होने पर भी भक्ति नही होगी, तो सब कुछ व्यर्थ हो जाऐगा। अतः भक्ति प्राण है, वैराग्य पैर है, धर्म हृदय है और ज्ञान नेत्र है। जिह्वा से भजन करें और अधर्म से निर्मित होनेवाले अनेक दोषों का प्रवेश हृदय में न होने दें, तो वह जीव ब्रह्मरूप हो जाता है।

'पशु मनुष्य से भी अधिक गरज रखता है। यदि रोटी का एक टुकड़ा कुत्ते को डाल दिया, वह हमारे पीछे-पीछे घूमता रहेगा। चाहे उसको धुत्कार ही क्यों न करें, फिर भी वह हमारे घर की रखवाली अवश्य करेगा। अतः कम से कम अपना स्वभाव कुत्ते की तरह कुछ तो अहंशून्य बनाओ। वर्ना हम तो देख रहे हैं, कि तनिक सा अपमान हो गया तो सत्संग में उसका ठिकाना तक नहीं रहता। परन्तु हमें जान लेना चाहिए कि हमारी रोटी अर्थात् हमारा मोक्ष सत्संग के सिवा कहीं भी नहीं है। इस बात को बड़ी सावधानी से दृढ़ बनाकर रखना।

'शास्त्र में अनेक प्रकार की ग्रंथियों की बात कही गई है। उनमें पूर्ण वैराग्य सिद्ध होने से स्नेह ग्रन्थि खुल जाती है, भगवान के स्वरूप का निश्चय होने से संशय ग्रंथि खुल जाती है। ज्ञान सिद्ध होने से अहंग्रन्थि खुल जाती है, आत्मनिष्ठा सिद्ध होने से ममत्वग्रन्थि खुल जाती है तथा पूर्णरूप से धर्म निष्ठा सिद्ध कर लेने से मैथुनग्रन्थि अर्थात् हृदयग्रन्थि खुल जाती है।'

इस उत्सव में जागा स्वामी तथा भगतजी एक-दूसरे के आसन पर पधारकर आध्यात्मिक बातें करते थे। जागा स्वामी ने एक बार हरिभक्तों को भगतजी की महिमा समझाते हुए कहा, 'ये तो गुणातीतानंद स्वामी द्वारा लगाए गए गुणातीत-बाग के श्रेष्ठ फल हैं और हम सभी के गुरु हैं। हमारा बड़ा सौभाग्य है कि भगतजी का हमें योग हुआ।'

भगतजी उपदेश देते हुए संतों-भक्तों को सुनाते कि, 'इस लोक में जितने भी विषय हैं, वे यदि किसी को मिल जाएँ, तो वह तब तक सुखी रहेगा, जब तक इस लोक में उसका शरीर रहेगा। परन्तु अन्त में उसे घोर नरक की प्राप्ति होगी। अत: केवल संत-संगति से अंत:करण शुद्ध हो सकता है।' इस पर उन्होंने एक दृष्टांत सुनाया, 'एक वैष्णव हमेशा स्नानादि से पवित्र रहता था और अपना आहार-विहार शुद्ध रखता था। उसका मन स्थिर था और उसे भजन में भी आनंद मिलता था। एक बार किसी काम से वह गाँव से बाहर गया। वहाँ पूजा करने बैठा, परन्तु उसका मन एकाग्र नहीं हो पाया। उसने मकान-मालिक से पूछा कि मेरा मन यहाँ एकाग्र क्यों नहीं हो रहा है? उसने कहा, 'तुम जिस कुएँ से पानी लाए थे, वह कुआँ अशुद्ध है।' फिर वह दूसरे कुएँ से पानी लाया। उसका उपयोग किया, तब उसका मन स्थिर हो गया। अत: आहार-विहार की शुद्धि से मन एकाग्र होता है तथा ऐसे शुद्ध अन्त:करण में ही भगवान की स्मृति रहती है और भजन भी होता है।'

'हम सभी शरीर को संभालकर रखते हैं। शाम को खुली हवा में टहलने जाते हैं; इस प्रकार दिन भर देह को सुखी करने में लगे रहते हैं। किन्तु जब तक मन गुरु को सौंप नहीं दिया, तब तक किसी तरह की प्राप्ति नहीं हो पाऐगी। हमें इन्द्रियों एवं अंत:करण को दबाकर रखना चाहिए परंतु, विषयों के सन्मुख कभी नहीं होने देना चाहिए। पंचविषयों से मिलने वाला सुख तो घासफूस की आग के समान है। जो जलता हुआ आगे बढ़ता रहता

है और पीछे से बुझता जाता है। फिर भी मनुष्य पंचविषयों के सुख का व्यसनी हो गया है।'

एकबार उन्होंने स्वामी यज्ञपुरुषदासजी से गुरुमहिमा के श्लोक बोलने के लिए आदेश दिया और कहने लगे, 'अन्तर का अज्ञान दूर करें, वही गुरु। जो आंतर-बाह्य पवित्रता रखता है, वही गुरु। जिनके दर्शन से विभ्रान्त मन स्थिर और एकाग्र हो जाता है, वही है गुरु । जो अपने शिष्यों के सभी दोषों को दूर करके शुद्ध करता है, वही गुरु है। जो मुमुक्षु हृदय के भाव से गुरु की खोज करता है, उसे सच्चे गुरु अवश्य मिल जाते हैं। इसीलिए हमें ब्रह्म-स्थिति से समपन्न सत्पुरुष की खोज हमेशा करनी चाहिए।

'एक बछड़ा अपनी माँ से बिछड़ गया था। बाद में उसे ढूँढ़ता हुआ वह गोशाला में जा पहुँचा। वहाँ तो कुछ सांड रखे हुए थे। जैसे ही बछड़े ने दूध पीने के लिए मुँह लगाया कि सांड से लात खानी पड़ी। इस प्रकार लात खाते-खाते उसके मुँह पर सूजन आ गई। जब वह अपनी माँ के थन से दूध पीने का प्रयास करने लगा, तो मुँह में दर्द होने के कारण वह दूध पीने के लिए समर्थ नहीं हो पाया। उसी तरह सत्पुरुष को छोड़कर कोई बुरे लोगों का संग करेगा, तो उसे लातें ही खानी पड़ेगी।

'हमें उस पालतू कपोत के समान बनना चाहिए। जैसे वे आसमान से आँखें बंद करके निश्चिंत होकर गिरते हैं। परंतु उसका मालिक उसे अपनी झोली में धारण कर लेता है। उसी प्रकार यदि हम भी समर्पित होकर और अपना सब कुछ सौंपकर सत्पुरुष की आज्ञा का पालन करते रहें, हम भी पूर्ण काम हो जाएँगे। शरीर को जूते के समान समझकर आज्ञा के मार्ग पर घसीटते रहना चाहिए तथा पालतू कपोत की भाँति निश्चत होकर सत्पुरुष की झोली में गिर जाना चाहिए, तब रक्षा करनेवाले हमें संभाल लेंगे।

इस प्रकार जूनागढ़ पधारकर, भगतजी ने यज्ञपुरुषदासजी की समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दीं तथा महाराजश्री से आज्ञा लेकर वे अपने शिष्य मंडल के साथ गोंडल की ओर निकल गए।

भगतजी महाराज से अलग होते समय, जागा स्वामी अपने आँसू न रोक पाए। दोनों बार-बार गले लगे। आज गुणातीतानन्द स्वामी के दो परम शिष्य हमेशा के लिए बिछड़ रहे थे।

28. अन्तिम लीला

गोंडल में यज्ञपुरुषदासजी ने भगतजी से अपनी आगे की पढ़ाई के विषय में पूछा, तो भगतजी ने कहा कि 'तुमने शास्त्रों का अध्ययन भली-भांति सम्पन्न कर लिया है और मुझसे ब्रह्मविद्या भी पूर्ण रूप से प्राप्त कर ली है। अब तुम्हारा कर्तव्य यह है कि तुम्हें जो आनन्द प्राप्त हुआ है, उसे दूसरों को भी प्राप्त कराओ।' इतना कहकर भगतजी महाराज यह संकेत दे दिया कि यज्ञपुरुषदासजी ही अब सभी संतों-भक्तों के गुरुपद पर हैं तथा उन्हीं के द्वारा सभी को ब्रह्म-आनंद की प्राप्ति होगी।

महुवा पहुँचकर भगतजी ने बीमारी ग्रहण की। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अब उन्होंने धाम में जाने का निश्चय कर लिया है। अन्तिम दर्शनों के लिए कुछ हरिभक्तों को उन्होंने महुवा बुलाया। मुंबई से जेठा भगत भी कोठारी पद की जिम्मेदारी छोड़कर भगतजी की सेवा के लिए महुवा आ पहुँचे। गुजरात के कोने-कोने से हरिभक्त महुवा पहुँचने लगे थे।

कुछ दिनों के बाद भगतजी महाराज ने अन्न लेना छोड़ दिया। प्रतिदिन बीमारी बढ़ रही थी। भगतजी सभी को सांत्वन देते और कुछ बातें भी सुनाते।

अन्नकूट के उत्सव पर वे योगकला धारण करके अत्यन्त स्वस्थ होकर मन्दिर में पधारे। ठाकुरजी का दर्शन किया तथा वहाँ उपस्थित हजारो हरिभक्तों को अपने दर्शन का लाभ दिया। फिर कहा, 'आज जिसने हमारा एक बार भी दर्शन किया है, उसे मैं अक्षरधाम ले जाऊँगा।'

अनेक हरिभक्त भगतजी की दीर्घायु के लिए स्तुति-प्रार्थना कर रहे थे। चाणसद से आए हुए वैद्य मनसुखभाई ने कुछ औषधि दूध के साथ दी किन्तु भगतजी ने लेने से मनाकर दिया।

यज्ञपुरुषदासजी भी यहाँ आना चाहते थे, परंतु गुरु की आज्ञा नहीं थी। वे नहीं आ पाए परंतु उनका मन तो निरंतर भगतजी का भजन कर रहा था। उन्होंने बिनतीपत्र भेज कर स्वस्थ होने के लिए गुरु-चरणों में प्रार्थना की। परंतु आखिर वही हुआ जिसका उन्होंने निर्णय कर रखा था।

कार्तिक शुक्ल 13, संवत् 1954 (सन् 1897) के प्रातः काल से ही भगतजी की देहदशा सोचनीय हो गई थी। आज तक वे प्रातःस्नान करके

नियमित रूप से पूजा करते आ रहे थे। किन्तु आज वे नित्यकर्म भी नहीं कर सके थे। प्रभुदास कोठारी, कोठारी जेठाभगत तथा अन्य हरिभक्त उन्हें घेरकर खड़े थे। अचानक भगतजी ने कहा, 'मुझे वरताल ले चलो।'

इतना कहकर वे स्वस्थ मनुष्य की तरह उठ बैठे और स्वस्तिक आसन लगा लिए। इसके साथ ही वे साँस तथा नाड़ी समेटकर समाधिस्थ हो गए। कुछ ही पलों में वे स्वयं को परमात्मा में एकाग्र करके स्वतंत्र रूप से अक्षरधाम सिधार गए।

नाड़ी टटोलने पर नहीं मिल रही थी। सभी हरिभक्तों पर जैसे बिजली गिर गई! उनके असह्य कल्पांत से दिशाएँ काँपने लगीं। कोठारी जेठा भगत सभी को आश्वासन दे रहे थे।

भगतजी की देह को भूमि पर गाय के गोबर का लेप करके लिटाया गया। सभीने अखण्ड धुन आरम्भ कर दी । शीघ्र ही यह दुःखद समाचार सारे शहर में फैल गया। सारा गाँव उनको प्रिय था और सारा गाँव उनसे प्रेम करता था। सैकड़ों लोग उनके अन्तिम दर्शन के लिए दौड़ पड़े। भगतजी ने पहले ही कह दिया था कि मेरा अन्तिम संस्कार मेरी जाति की रीति के अनुसार करना, किन्तु चन्दन आदि का प्रयोग मत करना।

तदनुसार, अगले दिन, मालन नदी के तट पर फूलचन्द सेठ की बाड़ी में हज़ारों हरिभक्तों की उपस्थिति में भगतजी महाराज के पंचभौतिक शरीर का अग्नि संस्कार विधिपूर्वक किया गया।

यज्ञपुरुषदासजी इस समाचार से अत्यन्त आहत हुए। उनके हृदय पर मानो वज्रपात हुआ। स्नान के लिए जाते हुए वे बेहोश हो गए। श्रीहरि ने अचानक प्रकट होकर उनको दर्शन दिया और कहा, 'मैं कहाँ गया हूँ? मैं तो तुम्हारे स्वरूप में अखण्ड रहता हूँ।'

इतना कहकर उन्होंने गुलाब और मोगरे की माला अपने गले से उतार कर यज्ञपुरुषदासजी को दे दी। सहयोगी संत बड़े सौभाग्यशाली थे कि उन्होंने यह दृश्य देखा। इस घटना के पश्चात् यज्ञपुरुषदासजी का शोक दूर हो गया। श्रीहरि के दिव्य शब्दों का रहस्य सभी की समझ में आने लगा कि भगवान अब स्वामी यज्ञपुरुषदासजी–शास्त्रीजी महाराज द्वारा सत्संग में सदा के लिए प्रकट हैं।

29. ऐश्वर्य दर्शन

संवत् 1914 (सन् 1858) में भगतजी महुवा के हरिभक्तों के साथ जूनागढ़ में गुणातीतानन्द स्वामी के दर्शन के लिए जा रहे थे। भारी वर्षा के कारण शेत्रुंजी नदी में बाढ़ आ गई थी। धारा अत्यन्त तीव्र थी, अतः कोई नाविक नदी पार कराने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था। सभी यात्री भी किनारे पर खड़े थे। भगतजी ने हरिभक्तों की हिम्मत बढ़ाते हुए कहा, 'महाराज तथा स्वामी का स्मरण करके पार उतरना आरंभ करो।' इतना कहकर वे आगे बढ़ने लगे।

नाविकों ने सभी को समझाया कि इस बाढ़ में कुछ भी हो सकता हैं, परंतु जिसके हृदय में श्रीहरि तथा स्वामी के चरणों में अनन्य विश्वास था, वे क्यों डरते?

हरकोई जानता था कि भगतजी द्वारा श्रीहरि ही आज्ञा दे रहे हैं। नदी के बीच में केवल छाती तक पानी आ रहा था। पानी का प्रवाह ही अचानक मंद हो गया। सभी हरिभक्त भगतजी का अनुसरण करते रहे। किनारे पर खड़े रहकर लोग यह अनुपम दृश्य देख रहे थे, उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वे भक्तों की श्रद्धा एवं हिम्मत की सराहना करने लगे ।

रास्ते में एक हरिभक्त को कुत्ते ने काट लिया। भगतजी ने उस पर हाथ फेरा और उसका दर्द तुरंत मिट गया। आगे जाने पर भगतजी के बड़े भैया नरसिंहभाई को काले नाग ने काट लिया। भगतजी ने सांत्वना देकर कहा, 'आप सब महाराज से प्रार्थना करो, सब कुछ ठीक हो जाएगा।' प्रार्थना के बाद शीघ्र ही उन्हें आराम हो गया, 'स्वामिनारायण' मंत्र के प्रभाव और सत्पुरुषों के आशीर्वाद से उन्होंने नवजीवन प्राप्त किया। आगे चलते हुए सभी को लुटेरों ने घेर लिया। हरिभक्तों ने उनको अपनी परिस्थित समझाई तथा अपने साथ भोजन के लिए निमंत्रित किया। वे मान गए और खाकर वहाँ से खिसक गए। इस प्रकार भगतजी ने अनेक कठिनाइयों से सभी को उबार लिया।

* * *

संवत् 1943 (सन् 1887) के वर्ष में भगतजी हरिभक्तों के संघ को गढ़डा ले जा रहे थे। भारी वर्षा के दिन थे। घनघोर अंधेरा छा गया था, कीचड़ और कांटे से भरा मार्ग कहीं खत्म होने का नाम नहीं ले रहा था।

हरिभक्त सोच रहे थे कि हम कब और किस तरह मंजिल को पाएँगे? सभी ने भगतजी का सहारा लिया। उन्होंने सभी को वर्तुलाकार बैठने की आज्ञा दी तथा सभी को एक-दूसरों के पैरों के अगूँठे पकड़कर आँखें बंद करके प्रार्थना करने का आदेश दिया। सभी ने उसी प्रकार किया।

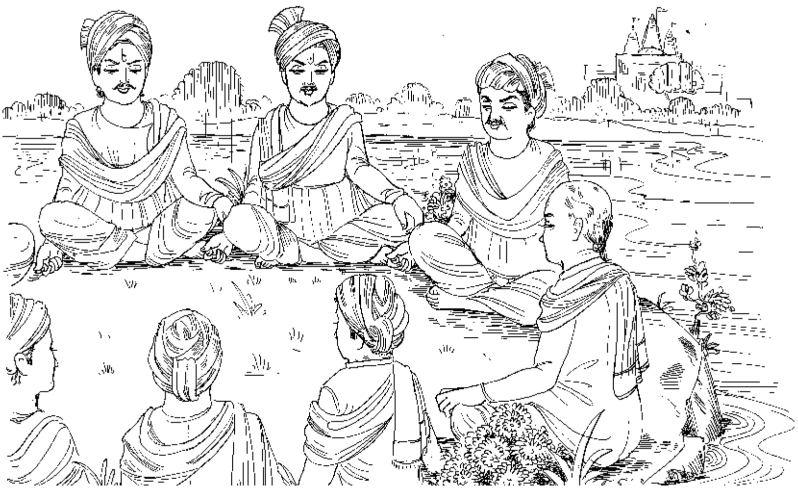

कुछ देर के बाद भगतजी के आदेश से सभी ने आँखे खोली। देखा तो सभी आश्चर्य मुग्ध हो गए। क्योंकि सभी गढ़पुर में घेला नदी के तट पर बैठे थे। भगतजी ने उन्हें क्षण भर में गढ़डा पहुँचा दिया था।

* * *

एकबार महुवा का कानजी दर्जी, भगतजी के साथ गढ़पुर आया। दोनों ठाकुरजी के वस्त्र सी रहे थे। वरताल से विहारीलालजी महाराज पधारे थे, कानजीभाई और भगतजी हरिभक्तों के साथ उनके स्वागत के लिए गाँव की सीमा पर पहुँचे। भगतजी को देखकर महाराजश्री अति प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने कंठ से गुलाबों की पुष्पमाला भगतजी को दे दी। यह प्रसादिक पुष्पहार भगतजी ने कानजीभाई के हाथ में दे दिया। उसी दिन से कानजीभाई को श्रीहरि और स्वामी की मूर्ति निरंतर दिखाई देने लगी। तीन वर्ष के बाद कानजी का विवाह हुआ, तब से दर्शन होना बंद हुआ।

* * *

सारे महुवा शहर में हैजा की बीमारी फैल गई थी। विट्ठलभाई की पुत्रवधू भी इस रोग की शिकार हुई। जब कोई भगतजी से इस रोग को ठीक करने की प्रार्थना करता, तो वे कहते, 'जा, हनुमानजी की मूर्ति पर तेल चढ़ा दे' ऐसा करने पर हैजे का रोगी ठीक हो जाता। विट्ठलभाई ने भी हनुमानजी पर तेल चढ़ाया, परंतु उनकी पुत्रवधू का रोग नहीं मिटा। अतः वे भगतजी के पास आए और विनती करके कहा, 'मैंने हनुमानजी को तेल चढ़ाया पर कुछ भी परिणाम नहीं निकला।'

भगतजी ने पूछा, 'तुम्हें तेल चढ़ाने को किसने कहा था?'

विठ्ठलभाई ने उत्तर दिया, 'आप बहुतों को तेल चढ़ाने का ही आदेश देते हैं, अतः मैंने अपने आप ही सोचकर चढ़ा दिया।'

भगतजी उसकी भोली बात पर हँसे और कहा, 'इसमें मनमानी नहीं चलती। मनमानी करोगे तो सफल नहीं होंगे। अब मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, पुनः जाओ और श्रीहरि द्वारा स्थापित हनुमानजी की मूर्ति पर तेल चढ़ाओ।' उन्होंने आज्ञा का पालन किया और उसकी पुत्रवधू स्वस्थ हो गई।

* * *

संवत् 1951 (सन् 1895) में भगतजी महुवा में थे। एक ब्राह्मण उनके घर आया और भगतजी के नेत्रों में अपलक झांकने लगा। भगतजी ने पूछा, 'भूदेव, मेरे नेत्रों में आप क्या देख रहे हैं? मेरे रोम-रोम में आपको भगवान स्वामिनारायण ही मिलेंगे।'

ब्राह्मण ने कहा, 'सच कहा आपने। आपकी दोनों आँखों की पुतलियों में मुझे उनका ही दर्शन हो रहा है। इसलिए मैं आपकी आँखों में देख रहा हूँ।'

* * *

अंतिम दिनों में भगतजी अत्यन्त बीमार थे। महुवा मन्दिर में अन्नकूट का उत्सव मनाया जा रहा था। पूरे उत्सव की आर्थिक सेवा भगतजी ने की थी। उन्होंने आज मन्दिर जाने का निश्चय किया । सभी इस निर्णय से चकित थे। परंतु भगतजी स्वतः स्वस्थ मनुष्य की तरह उठे, स्नान किया, नए वस्त्र पहने, पगड़ी अपनी ही हाथों से बाँध ली और शरीर पर चादर लपेटकर सेवक के साथ अपनी योगशक्ति धारण करके मन्दिर की ओर चल दिए। हरिभक्त उनके लिए वाहन की व्यवस्था करते ही रह गए।

मन्दिर में उन्होंने ठाकुरजी का दर्शन किया, मंदिर के गुम्बज में दाहिनी ओर से दूसरे खंभें के सहारे बैठकर उन्होंने हज़ारों हरिभक्तों को दर्शन लाभ दिया, जो अन्नकूट के दर्शन के लिए आए थे। सभी लोग स्वयं को भगतजी की मनोहर मूर्ति का दर्शन करके सौभाग्यशाली समझ रहे थे।

बाद में फूलचंदभाई के पिताश्री खीमजीभाई की गाड़ी में बिराजमान होकर भगतजी अपने घर लौटे और अपने सेवक कोठारी जेठा भगत से कहने लगे, 'आज जिसने भी मेरे दर्शन किये, उसका कल्याण हो गया। उसे मैं अक्षरधाम में ले जाऊँगा।'

कितनी महान कृपा !